इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ

एम.टी.टी.–021

अनुवाद प्रशिक्षण

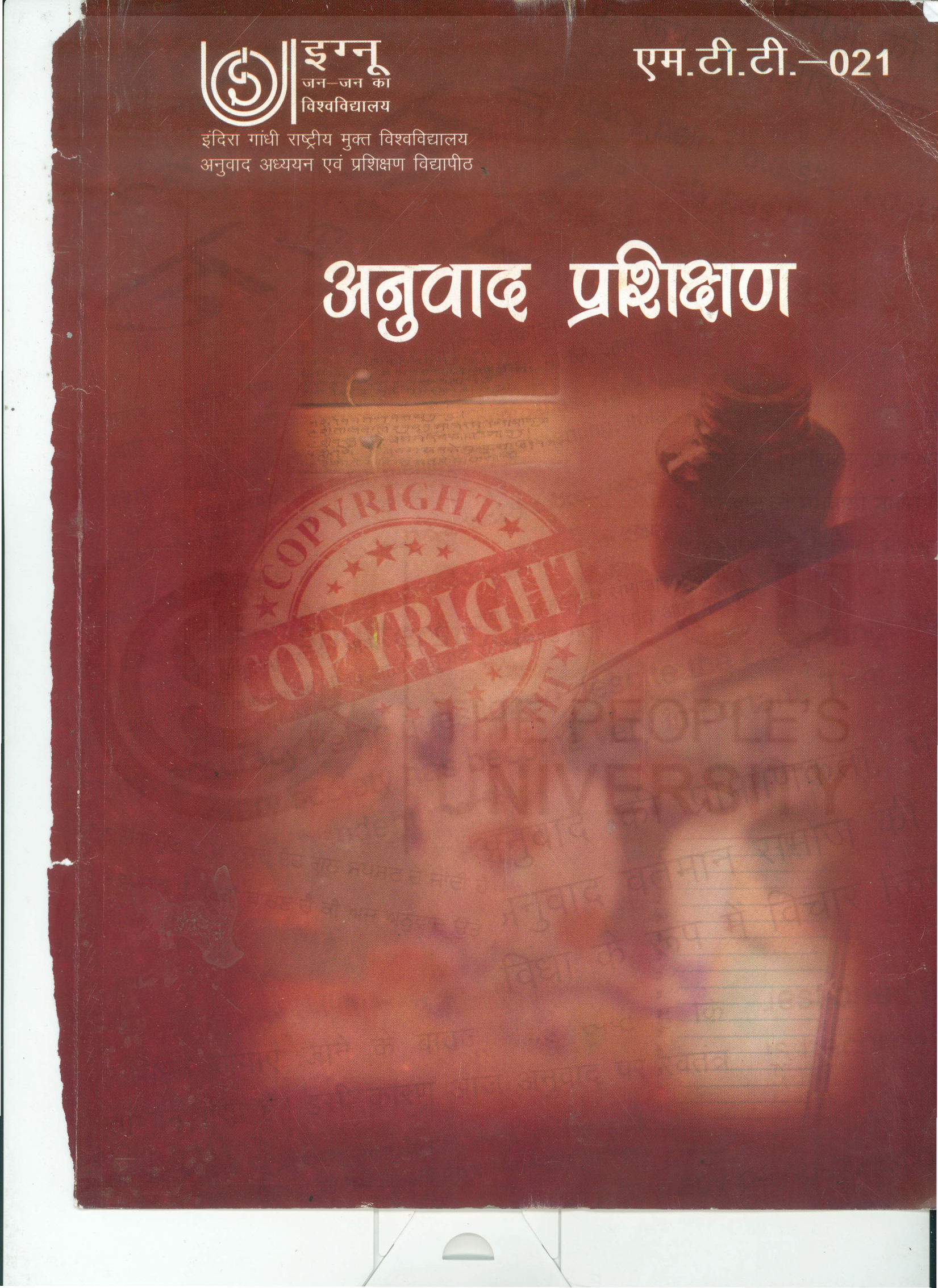

खण्ड

4

अनुवादक के साधन

इकाई 8

अनुवाद प्रशिक्षण का महत्त्व 113

इकाई 9

भाषा की संस्कृति और पर्यावरण 132

इकाई 10

पाठ और भाषा विमर्श 140

खण्ड-4 का परिचय

अनुवाद कार्य में *स्रोत-भाषा* और *लक्ष्य-भाषा* की प्रकृति के साथ-साथ उसकी भाषिक संस्कृति और परिवेश का बड़ा महत्त्व होता है। अनुवाद के दौरान शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों, वाक्य विन्यास आदि के प्रयोग में अपेक्षित सावधानियों के बारे में भी जानना जरूरी होता है। अनुवाद करते समय शब्द-प्रयोग की समस्या आती रहती है। भिन्न-भिन्न जीवन स्थितियों और कार्य क्षेत्रों में भाषा-रूपों की अपनी विशेषता होती है। इसलिए पाठ की प्रकृति को समझते हुए स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा की संस्कृति के अनुरूप शब्दों, वाक्यों का चुनाव करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में दोनों भाषाओं के कथन में व्यतिरेकी विश्लेषण की जरूरत पड़ती है। इसके जरिए समानार्थी लगने वाले शब्दों में से सही शब्द का चुनाव करने और जोड़ने या छोड़ने का निर्णय करना होता है। शब्दों, कथनों के बीच भेद, अभेद और अंशव्याप्ति की पहचान करना होता है। विभिन्न माध्यमों की भाषागत प्रकृति को समझते हुए अनुवाद को प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत करना होता है। यह भाषा-प्रयुक्ति की एक प्रक्रिया है। *अनुवाद के साधन* शीर्षक इस चौथे खण्ड की तीन इकाइयों *'अनुवाद प्रशिक्षण का महत्त्व'*, *'भाषा की संस्कृति और पर्यावरण'* और *'पाठ और भाषा विमर्श'* में अनुवाद प्रशिक्षण, और अनुवादक के भाषा-प्रयुक्ति सम्बन्धी विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श किया गया है।

इकाई 8 अनुवाद प्रशिक्षण का महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 प्रशिक्षण : अर्थ और आयाम

8.4 अनुवाद प्रशिक्षण : अभिप्राय एवं आवश्यकता

8.4.1 अनुवाद प्रशिक्षण से तात्पर्य

8.4.2 अनुवाद प्रशिक्षण की आवश्यकता

8.5 विदेशों में अनुवाद प्रशिक्षण : एक परिचय

8.6 भारत में अनुवाद-प्रशिक्षण के प्रयास एवं दिशाएँ

8.6.1 विश्वविद्यालय स्तरीय प्रयास

8.6.2 स्वैच्छिक प्रयास

8.6.3 अन्य सरकारी प्रयास

8.7 अनुवाद प्रशिक्षण की दिशाएँ एवं स्थिति

8.8 अनुवाद प्रशिक्षण के सोपान/सन्दर्भ

8.8.1 भाषा प्रशिक्षण के अंग के रूप में अनुवाद प्रशिक्षण

8.8.2 एक कौशल के रूप में अनुवाद प्रशिक्षण

8.8.3 स्वतन्त्र अध्ययन क्षेत्र की दृष्टि से अनुवाद प्रशिक्षण

8.8.4 कार्यशाला प्रशिक्षण

8.9 अनुवाद प्रशिक्षण का महत्त्व

8.9.1 प्रशिक्षु के परिप्रेक्ष्य में महत्त्व

8.9.2 प्रशिक्षण संस्था/व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में महत्त्व

8.9.3 समाज, राष्ट्र एवं विश्व के परिप्रेक्ष्य में महत्त्व

8.10 वर्तमान अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम : आलोचनात्मक मूल्यांकन

8.10.1 पाठ्यचर्या में विषय चयन की भिन्नता

8.10.2 प्रवेश के लिए न्यूनतम अर्हता एवं प्रशिक्षण अवधि की भिन्नता

8.10.3 सिद्धान्त और व्यवहार पक्ष की अनुपात भिन्नता

8.10.4 सीमित सम्भावित क्षेत्रों में प्रशिक्षण एवं रोजगार की उपलब्धता

8.10.5 आधार-सामग्री का अभाव

8.10.6 प्रशिक्षण की आधुनिक पद्धतियों का अभाव

8.10.7 दुभाषिया प्रशिक्षण का अभाव

8.11 सारांश

8.12 अभ्यास के लिए प्रश्न

8.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.1 उद्देश्य

यह इकाई अनुवाद प्रशिक्षण के महत्त्व से सम्बन्धित है। इस इकाई को पढ़ने से अनुवाद अध्ययन में एम. ए. करने वाले शिक्षार्थियों को अनुवाद प्रशिक्षण के महत्त्व की संक्षिप्त जानकारी मिलेगी। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- अनुवाद प्रशिक्षण के अर्थ, आवश्यकता और महत्त्व को समझ सकेंगे;
- अनुवाद प्रशिक्षण के सोपान और देश-विदेश में इसकी स्थिति के बारे में जान सकेंगे;
- अनुवाद प्रशिक्षण के प्रयासों के स्तर और दिशाओं की जानकारी हासिल कर सकेंगे; और
- वर्तमान अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना

अनुवादक के प्रशिक्षण से सम्बन्धित इस पाठ्यक्रम के पिछले तीन खण्डों में शामिल विभिन्न इकाइयों के माध्यम से आप कॉपीराइट कानून और अनुवाद अधिकारों, व्यावसायिक नैतिकता और व्यवहार नियमावली के साथ-साथ अनुवादक और भाषा सक्षमता के सम्बन्ध में जानकारी हासिल कर चुके हैं। इस पाठ्यक्रम का अन्तिम खण्ड अनुवाद के विविध साधनों के ज्ञान से सम्बन्धित है। इसमें सबसे पहले अनुवाद प्रशिक्षण के महत्त्व सम्बन्धी इकाई को शामिल किया गया है। अनुवाद प्रशिक्षण के विभिन्न आयामों पर केन्द्रित यह इकाई अपने अर्थ और स्वरूप में सही मायनों में आपके पाठ्यक्रम के शीर्षक को सार्थक सिद्ध करती है।

अनुवाद प्रशिक्षण के महत्त्व पर विचार करते समय सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि 'प्रशिक्षण' का अर्थ क्या है। जब हम प्रशिक्षण की बात करते हैं तो 'शिक्षा' से इसकी भिन्नता पर विचार करना भी जरूरी हो जाता है। इसलिए इस इकाई में सबसे पहले इसी पक्ष को लिया गया है और फिर उसके बाद अनुवाद प्रशिक्षण के अर्थ और आवश्यकता को रेखांकित किया गया है। आज देश-विदेश में विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रमों के सम्बन्ध में मोटी जानकारी उपलब्ध कराने के साथ-साथ इस इकाई में भारत में अनुवाद-प्रशिक्षण के प्रयास एवं दिशाओं को उद्घाटित किया गया है। भारत में इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के बारे में विश्वविद्यालय स्तरीय प्रयास, स्वैच्छिक संस्थाओं के प्रयास और अन्य सरकारी प्रयास विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करते हैं।

वर्तमान में विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रमों के अनेक सोपान अथवा सन्दर्भ हैं। यह प्रशिक्षण कहीं भाषा प्रशिक्षण के रूप में दिया जा रहा है तो कहीं एक कौशल के रूप में। शिक्षा-जगत की नई पद्धतियों में अनुवाद प्रशिक्षण को स्वतन्त्र अध्ययन क्षेत्र माना जाता है। कार्यशाला प्रशिक्षण भी इसका एक सोपान है। इन सभी सन्दर्भों में इस इकाई में विस्तार से जानकारी भी दी गई है। इसमें भारत जैसे बहुभाषिक समाज में भाषायी भिन्नता के आधार पर अनुवाद प्रशिक्षण की जानकारी दी गई है। इस इकाई में प्रशिक्षु, प्रशिक्षण संस्था, प्रशिक्षक के साथ-साथ समाज, राष्ट्र एवं विश्व के परिप्रेक्ष्य में अनुवाद प्रशिक्षण के महत्त्व को भी रेखांकित किया गया है। इकाई के अन्त में वर्तमान अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है।

8.3 प्रशिक्षण : अर्थ और आयाम

'प्रशिक्षण' शब्द, तत्सम शब्द 'शिक्षण' में 'प्र' उपसर्ग से मिलकर बना है। संस्कृत का 'प्र' उपसर्ग उत्कर्ष, उत्कृष्ट, अतिशय, आगे, अधिक, गति, या, उत्पत्ति, व्यवहार आदि अर्थों की ध्वनि देता है। इस तरह, व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'प्रशिक्षण' शब्द 'अधिक/अतिशय शिक्षण' को व्यक्त करता है। यह वास्तव में, शिक्षण में उत्कृष्टता दर्शाता है।

'प्रशिक्षण' शब्द का सामान्य अर्थ है – किसी कार्य को करने से सम्बन्धित ज्ञान, अभ्यास एवं निपुणता/योग्यता को व्यवस्थित ढंग से, क्रमबद्ध रूप में सीखना-सिखाना। यह सीखना-सिखाना (अर्थात् ज्ञान अथवा कौशल अर्जित करना) किसी उद्देश्य विशेष को पूरा करने के लिए किया जाता है। इस तरह प्रशिक्षण को किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए ज्ञान अथवा कौशल सीखने की एक संगठित प्रक्रिया कहा जा सकता है। प्रशिक्षण द्वारा व्यक्ति को कोई वांछित कार्य करने योग्य बनाया जाता है। इससे व्यक्ति किसी कार्य-विशेष को दक्षतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए ज्ञान अर्जित करता है, उससे सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने का कौशल अर्जित करता है तथा सीमाओं की जानकारी हासिल करता है।

श्री कालिका प्रसाद द्वारा सम्पादित हिन्दी कोश में 'प्रशिक्षण' का अर्थ 'किसी व्यवसाय, कला, शिल्पादि की व्यावहारिक रूप में लगातार कुछ समय तक दी जाने वाली शिक्षा' है। इस कोशीय अर्थ के अनुसार थोड़े समय तक किसी कलादि के बारे में दी जाने वाली व्यावहारिक शिक्षा प्रशिक्षण है, ऐसे में सवाल यह उठता है कि क्या 'प्रशिक्षण' और 'शिक्षा' का अर्थ एक ही है? सामान्य स्थितियों में लोग दोनों शब्दों में कुछ खास अन्तर नहीं समझते, पर गम्भीरता से विचार किया जाए तो प्रशिक्षण और शिक्षा में थोड़ी भिन्नता नजर आती है।

'शिक्षा' और 'प्रशिक्षण' – इन दोनों पदों से सम्बद्ध उद्यम ज्ञान आर्जित करने की प्रक्रिया है। 'शिक्षा' के माध्यम से मानव के मन-मस्तिष्क, बुद्धि एवं रचनात्मक क्षमता का समग्र विकास होता है। शिक्षा से प्राप्त कौशल एवं बुद्धि के बूते मनुष्य सत्य-असत्य, सही-गलत के निर्णय करता है। जबकि 'प्रशिक्षण' से प्राप्त कौशल एक व्यावहारिक प्रक्रिया है। इसमें प्रशिक्षणार्थी को दिए जाने वाले प्रशिक्षण में कार्य-विशेष को पूरा करने के नियम, पद्धति, जटिलता आदि की जानकारी दी जाती है और कार्य-विशेष को पूरा करने हेतु प्रशिक्षु के समुचित कौशल, योग्यता एवं निपुणता को व्यवस्थित किया जाता है, बढ़ाया जाता है।

अर्थ की दृष्टि 'शिक्षा' और 'प्रशिक्षण' में अन्तर के कुछ आधार इस प्रकार हैं :

- शिक्षा से ज्ञानार्जन होता है, पर उसे अद्यतन करने एवं व्यावहारिक ज्ञान अर्जित करने के लिए प्रशिक्षण जरूरी है।
- शिक्षा, हर औपचारिक प्रशिक्षण के लिए आधार होती है, किसी भी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्रवेश के लिए न्यूनतम अर्हता के रूप में औपचारिक शिक्षा जरूरी होती है। जबकि शिक्षार्जन के लिए प्रशिक्षण कोई आधार नहीं होता।
- प्रशिक्षण-प्रक्रिया औपचारिक शिक्षा के बाद में भी चलती रहती है। जबकि रोजगार आदि में प्रवेश से पूर्व कर्ता अपनी औपचारिक शिक्षा पूरी कर लेता है। प्रशिक्षण से रोजगार पाने की अर्हता पूरी हो जाती है, पर कार्य करते हुए अर्जित अनुभव जैसे सन्दर्भों में प्रशिक्षण-प्रक्रिया बाद में भी चलती रहती है।

इन सूक्ष्म भिन्नताओं के बावजूद, शिक्षा और प्रशिक्षण एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। कई बार, ये दोनों परस्पर व्यापी भी होते हैं, क्योंकि सभी प्रकार के प्रशिक्षण में कुछ न कुछ शिक्षा निहित है और सभी प्रकार की शिक्षा एवं शिक्षा-अभ्यास में कुछ न कुछ प्रशिक्षण का अंश भी विद्यमान होता है।

8.4 अनुवाद प्रशिक्षण : अभिप्राय एवं आवश्यकता

अनुवाद आज राष्ट्रीय, सामाजिक, साहित्यिक, व्यावसायिक, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी ... आदि जीवन-व्यवहार के हर मामलों में उपयोगी, प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण समझा जाने लगा है। अनुवाद का व्यापक महत्त्व है। इस महत्त्व के मद्देनजर ज्ञान के क्षेत्र में अनुवाद-अध्ययन को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में स्वीकारा गया है और विधा के रूप में यह विषय पूरे विश्व में तेजी से प्रचलित एवं विकसित हो रहा है। इसी के साथ-साथ अनुवाद प्रशिक्षण के सम्बन्ध में भी गम्भीरता से विचार शुरू हुआ। आइए सबसे पहले जानें कि अनुवाद-प्रशिक्षण से क्या अभिप्राय है और इसकी आवश्यकता क्यों है?

8.4.1 अनुवाद प्रशिक्षण से तात्पर्य

उल्लेख किया जा चुका है कि कार्य-निष्पादन से सम्बन्धित ज्ञान, अभ्यास एवं कौशल को व्यवस्थित ढंग से तथा क्रमबद्ध रूप में सीखना-सिखाना प्रशिक्षण कहलाता है। यदि प्रशिक्षण के इसी अर्थ को अनुवाद के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो अनुवाद-प्रशिक्षण का सामान्य अभिप्राय है – व्यक्ति को अनुवाद-कार्य की प्रविधि एवं जटिलताओं आदि के सम्बन्ध में जानकारी देकर उसके अनुवाद सम्बन्धी ज्ञान, योग्यता एवं कार्य-क्षमता में अभिवृद्धि करना। यह अभिवृद्धि भाषा-प्रयोग सीखकर, ज्ञान-विज्ञान एवं आनन्द के साहित्य का आस्वादन सीखकर और संस्कृति आदि का अवबोधन सीखकर होती है। अनुवाद प्रशिक्षण वह अल्पकालिक प्रक्रिया है जिससे अनुवाद सम्बन्धी तकनीकी ज्ञान एवं दक्षता हासिल की जाती है।

अनुवाद प्रशिक्षण का कार्य-क्षेत्र बहुत व्यापक है। यह अनुवाद सम्बन्धी सैद्धान्तिक अध्ययन के साथ-साथ अनुप्रयोग पक्ष से भी जुड़ा हुआ है। इसमें अनुवाद से सम्बन्धित सभी गतिविधियों का समावेश सम्भव है। अनुवाद-कौशल सिखाने और अनुवाद सिद्धान्त विषयक ज्ञान प्रदान करने के साथ-साथ इसमें अनुवाद पुनरीक्षण, अनुवाद मूल्यांकन एवं समीक्षा का अभ्यास कराना भी शामिल है। इससे अनुवादक विभिन्न विषय क्षेत्रों के अनुवाद, उनकी समस्याओं-सीमाओं आदि के बारे में जान पाता है।

अनुवाद-कौशल सिखाने में एक भाषा की सामग्री का दूसरी भाषा में अन्तरण के अलावा, सारांश लेखन, संक्षेपण-पल्लवन, व्याख्या, अर्थ-निरूपण, कोश निर्माण आदि अनुवादधर्मी कार्य-व्यापारों का शिक्षण और प्रूफ संशोधन जैसे प्रशिक्षण का भी समावेश सम्भव है। साथ ही प्रशिक्षुओं को कम्प्यूटर-इण्टरनेट आदि प्रौद्योगिकियों के जरिए अनुवाद में प्रयोग सम्बन्धी आयामों का शिक्षण-प्रशिक्षण भी आ सकता है। वहीं, इसमें कॉपीराइट अधिकारों, व्यावसायिक नैतिकताओं और व्यवहार नियमावली जैसे पक्षों का बोध भी शामिल हो सकता है। इस प्रकार अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम को 'व्यवहारोन्मुखी सैद्धान्तिक अध्ययन कार्यक्रम' कहा जा सकता है जो अनुवाद एवं अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में प्रशिक्षित मानव संसाधन तैयार करने में सहायक सिद्ध होता है।

8.4.2 अनुवाद प्रशिक्षण की आवश्यकता

अनुवाद के माध्यम से एक भाषा से दूसरी भाषा में सन्देश की अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। पर यह भी सत्य है कि अनुवाद-कार्य आधुनिक युग की देन नहीं है, बल्कि हजारों वर्ष पुरानी है। व्यवहार में अनुवाद-प्रथा उतनी ही प्राचीन है जितनी भाषा का प्रयोग। अनुवाद प्रशिक्षण, इसकी आवश्यकता पर विचार करते समय हमें सबसे पहले कुछ विद्वानों के विचार भी देखने-सुनने को मिलते हैं। वे मानते हैं कि अच्छे अनुवादक जन्मजात होते हैं, बनाए नहीं जाते। ऐसी धारणा तो कवियों के बारे में व्यक्त की जाती है कि 'कवि जन्मजात पैदा होते, बनाए नहीं जाते।' कुछ लोग यह तर्क भी देते हैं कि जिस प्रकार भाषा आते-आते आती है, वैसे ही अनुवाद करते-करते ही आता है और अनुवाद-कार्य करते-करते एक दिन अनुवादक, कुशल अनुवादक बन जाता है क्योंकि –

करत-करत अभ्यास ते, जड़मति होत सुजान
रसरी आवत-जात ते, सिल पर परत निसान।

अर्थात् जिस प्रकार रस्सी के बार-बार जाने-आने से पत्थर की बनी कुएँ की जगत पर रस्सी का गहरा निशान बन जाता है, उसी प्रकार सतत् अभ्यास से अज्ञानी भी बुद्धिमान हो जाते हैं। इसलिए ऐसी मान्यता के लोग औपचारिक अथवा अनौपचारिक अनुवाद-प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं समझते।

ऐसे लोगों द्वारा यह तर्क भी दिया जाता है कि अनुवाद-कार्य पहले भी किया जाता था, पर वे अनुवादक किसी शैक्षिक संस्थान या किसी अनुवाद प्रशिक्षण संस्था में औपचारिक रूप से प्रशिक्षित नहीं किए जाते थे। तर्क दिया जाता है कि आदिकाल से देश-विदेश के विद्वानों द्वारा किए गए अनुवाद-कार्यों के लिए उन्हें कहाँ कहीं प्रशिक्षण लेना पड़ा था? उनका सवाल है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में साहित्य रचना के साथ-साथ अनुवाद कर्म करने वाले रीतिकालीन मनीषी केशव, सोमनाथ, भूषण, भिखारीदास, चिन्तामणि, और आधुनिक काल के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि साहित्यकारों ने अनुवाद करने से पूर्व कहाँ कोई प्रशिक्षण लिया?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूर्व में अनुवादकों को किसी प्रकार का औपचारिक प्रशिक्षण नहीं दिया जाता था। पर यह भी सच है कि उस दौर की तुलना में आज की परिस्थितियों में काफी अन्तर आ चुका है। भारत के ही सन्दर्भ में देखें, तो कह सकते हैं कि जिन सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्यों में स्व-अर्जित ज्ञान के आधार पर उस दौर के मनीषी संस्कृत आदि भारतीय भाषाओं से स्वान्तः सुखाय और लोक-हित में अनुवाद करते थे, अब स्थितियाँ वैसी नहीं रहीं। संवाद और अनुवाद का पूरा परिदृश्य और उसकी जरूरत के गुणसूत्र बदल गए हैं। यहाँ तक कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भ विद्वानों ने भी स्व-अर्जित ज्ञान के सहारे जो अनुवाद-कार्य किया, वह परिदृश्य भी आज के परिदृश्य से मेल नहीं खाता। निश्चय ही वे अनुवाद कार्य अमूल्य थे, और आज भी हैं, पर सचाई है कि उन अनुवादों का दायित्व आज की तुलना में भिन्न था। यही बात दुनिया के अन्य देशों-समाजों के सन्दर्भ में भी कहीं जा सकती है।

हालाँकि आज भी ऐसे कई लोग हैं जो दोनों भाषाओं (स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा) के अपने अर्जित ज्ञान के बूते बगैर किसी प्रशिक्षण के कुशल अनुवादक माने जाते हैं। पर इस तर्क से अनुवाद प्रशिक्षण की अर्थवत्ता निरस्त नहीं हो जाती। आज अनुवाद का व्यापक महत्त्व है। विकास के उन्नत शिखर की ओर अग्रसर दुनिया में साहित्य के अलावा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में आशातीत प्रगति हुई है। संसार के विपुल ज्ञान भण्डार को अपनी भाषा के माध्यम से जानने तथा अपनी भाषा में रचित ज्ञान भण्डार को दूसरों तक पहुँचाने में अनुवाद की अहम् भूमिका है। यह कार्य बेहतर तरीके से तभी सम्भव है जब यह भली-भाँति प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न हो।

आज अनुवाद का विस्तार सृजनात्मक साहित्य से लेकर प्रशासन-तन्त्र, पर्यटन, विधि, कृषि, अभियान्त्रिकी, पत्रकारिता, शैक्षिक जगत ... जैसे जीवन-व्यवहार के सभी क्षेत्रों तक हुआ है और उन सबमें अनुवाद-कार्य भी चल रहा है। इन सभी कार्यक्षेत्रों में सामग्री के अच्छे अनुवाद हेतु विषय-विशेष का खास ज्ञान, अध्ययन-विशेषज्ञता और निरन्तर अभ्यास की जरूरत होती है। इस जरूरत की पूर्ति तभी सम्भव है जब इस सम्बन्ध में विधिवत व्यावहारिक शिक्षण प्राप्त किया गया हो। प्रशिक्षण के फलस्वरूप कार्य-क्षेत्र विशेष में अनुवाद की प्रवीणता प्राप्त करना सम्भव हो पाता है। इसलिए अनुवाद प्रशिक्षण अनिवार्य-सी योग्यता दिखती है।

स्वीकृत तथ्य है कि आज अनुवाद का व्यावसायिक रूप भी विकसित हो गया है, रोजगारोन्मुख कौशल का यह एक व्यापक क्षेत्र बन गया है। अनुवाद के जरिए लोग अर्थोपार्जन करते हैं। प्रशिक्षित न होने की वजह से कई व्यक्ति अपने इस रोजगार के प्रति गम्भीर नहीं होते, जिस कारण अनुवाद की गुणवत्ता अधिकतर समय में आज सन्दिग्ध दिखने लगी है। अनुवाद-कर्म के प्रति इस सन्दिग्ध धारणा की जिम्मेदारी इन प्रशिक्षणविहीन अनुवादकों के सिर ही जाता है। लिहाजा माना जाए कि अनुवाद पद्धति का सुनियोजित प्रशिक्षण दिया जाना अनिवार्य है, इससे अनुवादकों का कार्य सहज होगा और कुशल अनुवादक तैयार सकेंगे। अर्थात् सार्थक, सुव्यवस्थित और सुनियोजित अनुवाद प्रशिक्षण की नितान्त आवश्यकता है।

अनुवाद प्रशिक्षण किसी क्रियाशील अनुवादक को वह कौशलपूर्ण दृष्टि देता है जिसके सहारे वह अपने उद्यम के परिणाम में निखार लाता है और इस तरह सँवारा गया अनुवाद स्वयं मौलिक कृति की तरह प्रभावकारी बन जाता है। अनुवाद प्रशिक्षण से प्रशिक्षु का मनोबल ऊँचा होता है, आत्मशक्ति बढ़ती है, प्रशिक्षुओं की रुचियाँ अभिप्रेरित होती हैं। प्रशिक्षण के दौरान अनुवाद के पूर्व-प्रयत्नों के श्रेष्ठ उदाहरणों से प्रशिक्षुओं को उन बारीकियों से परिचय कराया जाता है, जिसके समावेश से अनुवाद की गुणवत्ता निखरती है, और जिनके प्रति सावधान रहने से अनुवाद निष्कलुष होता है। इस क्रम में अनुवाद तकनीक की बारीकियों से परिचित होता हुआ अनुवादक उत्साह से भर उठता है, अनुवाद कार्य की सामाजिक-सांस्कृतिक महत्ता को जान पाता है, अनूदित पाठ के जरिए उच्च मानवीय आदर्शों को समझ पाता है– और इस रास्ते अनुवाद के सामाजिक-सांस्कृतिक कर्तव्य को रेखांकित करती हुई अनुवाद-प्रशिक्षण की गतिविधियाँ अनुवादक के श्रम को घटाती हैं, अनुवाद की सहजता को बढ़ाती हैं। प्रशिक्षण-विहीन अनुवादकर्मी की तुलना बीच समुद्र में नाव पर बैठे हाथ में पतवार लिए उस नाविक से की जा सकती है, जो सारे संसाधनों से भरे-पूरे होने के बावजूद सहजता से नाव किनारे नहीं लगा सकता।

8.5 विदेशों में अनुवाद प्रशिक्षण : एक परिचय

वर्तमान समय में अनुवाद अध्ययन एक स्वतन्त्र कार्य-क्षेत्र के रूप में यथेष्ट रूप से चर्चित है। स्वैच्छिक क्रिया, अर्थात् 'स्वान्तः सुखाय' से शुरू हुआ यह रचनात्मक कार्य आज व्यावसायिकता के युग में प्रवेश पा गया है। इससे अनुवाद की सम्भावनाओं में अभिवृद्धि हुई है, औपचारिक तौर पर अनुवाद प्रशिक्षण के भी कई द्वार खुले हैं। आज विदेशों में अनेक शैक्षिक संस्थान अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम चला रहे हैं। ये प्रशिक्षण अनुवाद, अनुवचन या अनुवाद सम्बन्धी अन्य क्षेत्र विशेष पर केन्द्रित हैं। एक अनुमान के अनुसार विश्व के साठ से अधिक देशों में ढाई सौ विश्वविद्यालय स्तरीय निकायों में अनुवाद प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इन शैक्षिक संस्थाओं में ये कार्यक्रम स्नातक-पूर्व (under graduate) और स्नातकोत्तर (post graduate) स्तर के हैं। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के जरिए हजारों विद्यार्थी अनुवाद प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं। अनुवाद को रोजगार का माध्यम मानते हुए इन विद्यार्थियों ने पेशेवर अनुवादक, दुभाषिया (इण्टरप्रेटर) या फिर अनुवाद के किसी खास क्षेत्र में अनुवाद कार्य करने में दक्ष होने के लिए इन अध्ययन कार्यक्रमों में पढ़ाई की है।

इंगलैण्ड में सन् 1960 के दशक में विश्वविद्यालय स्तर पर अनुवचन (इण्टरप्रिटेशन) और अनुवाद में स्नातकोत्तर कार्यक्रम शुरू किए गए। वहाँ की युनिवर्सिटी ऑफ वेस्ट ऑफ इंगलैण्ड, ब्रिस्टल में दूर शिक्षा के माध्यम से अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा कार्यक्रम चलाया जा रहा है। यह कार्यक्रम अंग्रेजी और अरबी, फ्रांसीसी, जर्मन, इतालवी अथवा स्पैनिश भाषा से सम्बन्धित है। इस कार्यक्रम की खास बात यह है कि इसके आगे अनुवाद अध्ययन में एम.ए. भी किया जा सकता है। इसके अलावा, इंगलैण्ड की ही युनिवर्सिटी ऑफ लीड्स में 'Post Graduat Diploma in Applied Translation Studies'(अनुप्रयुक्त अनुवाद अध्ययन में स्नातकोत्तर डिप्लोमा) कार्यक्रम चलाया जा रहा है।

अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में इंगलैण्ड की ही युनिवर्सिटी ऑफ सरे (University of Surrey) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उस विश्वविद्यालय में अनुवाद अध्ययन का अध्यापन स्नातक और स्नातकोत्तर उपाधि हेतु तो किया ही जाता है, साथ-साथ शोध भी कराया जा रहा है। वहाँ स्नातक स्तर पर अनुवाद के तीन कार्यक्रम हैं :

1. B.A French and Translation (बी.ए. फ्रांसीसी और अनुवाद)।
2. B.A Spanish and Translation (बी.ए. स्पैनिश और अनुवाद)।
3. B.A German and Translation (बी.ए. जर्मन और अनुवाद)।

इसके अलावा, स्नातकोत्तर स्तर के निम्नलिखित सात कार्यक्रम भी चलाए जा हैं :

1. Audio-Visual Translation (दृश्य-श्रव्य अनुवाद)
2. Business Translation with Interpreting (निर्वचन सहित व्यावसायिक अनुवाद)
3. Public Service Interpreting (सार्वजनिक निर्वचन सेवा)
4. Specialised Translation and Translation Technology (विशेषीकृत अनुवाद और अनुवाद प्रौद्योगिकी)
5. Translation (अनुवाद)
6. Translation Studies (अनुवाद अध्ययन)
7. Translation Studies with Intercultural Communication (अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण और अनुवाद अध्ययन)

संयुक्त अरब अमीरात के खार्तुम स्थित युनिवर्सिटी ऑफ खार्तुम में अंग्रेजी/फ्रांसीसी और अरबी भाषा से सम्बन्धित अनुवाद में दो स्नातकोत्तर डिप्लोमा कार्यक्रम तथा अनुवाद में एम.ए. कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इन कार्यक्रमों को विश्वविद्यालय के कला संकाय से सम्बद्ध 'अनुवाद और अरबीकरण एकक' (Unit of Translation and Arabicization) के जरिए चलाया जा रहा है।

युनिवर्सिटी ऑफ माल्टा में अनुवाद सम्बन्धी निम्नलिखित छह अध्ययन कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं :

1. P.G. Diploma in Translation (अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा)
2. M.A. in Translation (अनुवाद में एम.ए.)
3. P.G. Diploma in Interpreting (अनुवचन में स्नातकोत्तर डिप्लोमा)
4. M.A. in Interpreting (अनुवचन में एम.ए.)
5. P.G. Diploma in Translation and Interpretion (अनुवाद एवं अनुवचन में स्नातकोत्तर डिप्लोमा)
6. M.A. in Translation and Interpretion (अनुवाद और अनुवचन में एम.ए.)

ऑस्ट्रेलिया के मकार्थर इन्स्टीच्यूट ऑफ हायर एजुकेशन में अनुवचन (interpreting) और अनुवाद में स्नातक उपाधि (बी.ए) का कार्यक्रम चलाया जा रहा है। एडिनबर्ग के हेरट-बाट विश्वविद्यालय में भाषा (अनुवचन और अनुवाद) में बी.ए. कार्यक्रम चल रहा है।

स्नातक और स्नातकोत्तर स्तरों पर अनुवाद और अनुवचन सम्बन्धी प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अलावा, विश्व के कुछ देशों में 'साहित्यानुवाद' (Literary Translation) पर केन्द्रित कुछ कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं। इंगलैण्ड के मिडिलसैक्स (Middlesex) युनिवर्सिटी और युनिवर्सिटी ऑफ ईस्ट एन्जलिया (नॉर्विच) में इसी प्रकार के अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इसके अलावा, नीदरलैण्ड, फ्रांस, स्लोवाकिया, आयरलैण्ड, यूनान, बेल्जियम, जर्मन, स्पेन और स्वीडन आदि अनेक यूरोपीय देशों के अनेक विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षुओं को साहित्यानुवाद अध्ययन एवं अनुवाद का व्यावहारिक प्रशिक्षण देकर कुशल अनुवादक तैयार किए जाते हैं।

इसके अलावा, संयुक्त अरब अमीरात (United Arab Emirates) विश्वविद्यालय के सतत शिक्षा केन्द्र (Continuing Education Centre) द्वारा चलाया जा रहा 'विधि अनुवाद में प्रोफेशनल सर्टिफिकेट' (Professional Certifcate in Legal Translation) कार्यक्रम भी उल्लेखनीय है।

इंगलैण्ड की युनिवर्सिटी ऑफ ईस्ट एन्जलिया में 'ब्रिटिश सेण्टर फॉर लिटरेरी ट्रान्सलेशन' नामक एक केन्द्र और युनिवर्सिटी ऑफ लीड्स में 'अनुवाद अध्ययन केन्द्र' (सेण्टर फॉर ट्रान्सलेशन स्टडीज) है।

8.6 भारत में अनुवाद-प्रशिक्षण के प्रयास एवं दिशाएँ

संसार के अनेक विश्वविद्यालयों में चलाए जा रहे अनुवाद सम्बन्धी इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों की जानकारी हासिल करने के बाद अब हम भारत में अनुवाद प्रशिक्षण की दिशा में किए गए प्रयासों और दिशाओं पर विचार करेंगे।

भारत में कई सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा व्यवस्थित अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। न्यूनतम अर्हता पूरी करने के बाद इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्रवेश दिया जाता है। लेकिन जहाँ तक विद्यार्थी का अनुवाद के मूलभूत प्रशिक्षण से प्रथम साक्षात्कार का सम्बन्ध है, यह साक्षात्कार स्कूल स्तर पर ही हो जाता है। स्कूल स्तर पर जब बच्चा अंग्रेजी आदि किसी भी अन्य भाषा को एक विषय के रूप में पढ़ना शुरू करता है, तब वह अपनी मातृभाषा अथवा देशी भाषा अथवा आदतन इस्तेमाल की जाने वाली भाषा के माध्यम से दूसरी भाषा सीखता है। स्कूल-स्तरीय अथवा कॉलेज-स्तरीय पूरी शिक्षा के दौरान जो अनुवाद करना सीखा जाता है वह किसी भी आम शिक्षित भारतीय के लिए अनुवाद सम्बन्धी प्रशिक्षण का कार्य करता है। पर इस प्रशिक्षण को कोई औपचारिक नाम नहीं दिया जा सकता, वह सहज अनुवाद होता है।

भारत में चलाए जा रहे संस्थागत अनुवाद-प्रशिक्षण कार्यक्रमों को तीन भागों में विभाजित कर जाना जा सकता है :

1. विश्वविद्यालय स्तरीय प्रयास
2. स्वैच्छिक संस्थाओं के प्रयास
3. अन्य सरकारी प्रयास

8.6.1 विश्वविद्यालय स्तरीय प्रयास

विश्वविद्यालय में अनुवादकों को प्रशिक्षण देने अथवा देश के लिए भावी अनुवादक तैयार करने के लिए अनुवाद प्रशिक्षण का पूर्व-इतिहास अज्ञात नहीं है। बीते कुछ दशकों में इस सन्दर्भ में प्रयास शुरू हुए हैं। हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर पर अनुवाद प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम आरम्भ करने का श्रेय दिल्ली विश्वविद्यालय को जाता है। यह एक-वर्षीय अंशकालीन अंग्रेजी-हिन्दी सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम 1960-62 में शुरू किया गया था। इसे आरम्भ करने का श्रेय प्रसिद्ध विद्वान नगेन्द्र को जाता है। इस विभाग के प्रमुख प्राध्यापक गार्गी गुप्त और नगीन चन्द्र सहगल थे। अनुवाद प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रम को भाषावैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत करने का श्रेय केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा को जाता है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम के आधार पर प्रो. चन्द्रहासन ने केरल विश्वविद्यालय में अनुवाद और प्रशासनिक पत्र-व्यवहार में अंशकालीन सर्टिफिकेट कार्यक्रम शुरू किया। कालान्तर में अन्य विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों में अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू होते गए। इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय में अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ सन् 2009 में स्थापित हुई है और अनेक कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। इसके

अलावा आन्ध्र विश्वविद्यालय, अन्नामलाई विश्वविद्यालय, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय (रीवा, मध्य प्रदेश), बंगलौर विश्वविद्यालय, बर्कतुल्ला विश्वविद्यालय, कोच्चि युनिवर्सिटी ऑफ साइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी, गुजरात विद्यापीठ (अहमदाबाद), दिल्ली विश्वविद्यालय, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय (औरंगाबाद), डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय (आगरा), गुरु नानक देव विश्वविद्यालय (अमृतसर), हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय (शिमला), हैदराबाद विश्वविद्यालय, कर्नाटक विश्वविद्यालय (धारवाड़), कन्नड़ विश्वविद्यालय (कर्नाटक), मद्रास विश्वविद्यालय, मदुरै कामराज विश्वविद्यालय, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय (रोहतक), पंजाबी विश्वविद्यालय (पटियाला), पंजाब विश्वविद्यालय (चण्डीगढ़), पद्मावती महिला विश्वविद्यालयम (तिरुपति), श्री शंकराचार्य युनिवर्सिटी ऑफ संस्कृत (केरल), महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय (वर्धा), कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय आदि अनेक विश्वविद्यालयों में अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। विभिन्न शिक्षण संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे ये कार्यक्रम कहीं डिप्लोमा स्तर के हैं, कहीं स्नातकोत्तर डिप्लोमा स्तर के और कहीं सर्टिफिकेट स्तर के। अनुवाद प्रशिक्षण सम्बन्धी ये सभी कार्यक्रम अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं।

विश्वविद्यालय स्तरीय प्रयासों के अन्तर्गत इस प्रकार के स्वतन्त्र रूप से अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम तो शुरू करने के अलावा, अध्ययन कार्यक्रमों में वैकल्पिक प्रश्न-पत्र के रूप में भी 'अनुवाद' को शामिल किया गया। दिल्ली विश्वविद्यालय ने एम.ए. हिन्दी अध्ययन कार्यक्रम के साथ बी.ए. (आनर्स) और बी.ए. (प्रोग्राम) में अनुवाद को एक वैकल्पिक प्रश्न-पत्र के रूप में शामिल किया। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा द्वारा संचालित अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान में स्नातकोत्तर डिप्लोमा कार्यक्रम में अनुवाद को एक प्रश्न-पत्र के रूप में शामिल किया गया। निश्चय ही अन्य शिक्षण संस्थानों ने भी इस दिशा में प्रयास किए होंगे।

लेकिन इस दिशा में राष्ट्र स्तर की पहली दूर शिक्षण संस्था–इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने अपने स्नातक उपाधि कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न व्यवहारमूलक पाठ्यक्रमों (जिनका मूल उद्देश्य विद्यार्थियों द्वारा स्वेच्छा से चुने गए किसी भी क्षेत्र अथवा दिशा-विशेष में उनकी व्यावहारिक निपुणता में वृद्धि करना है) में 'अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद पाठ्यक्रम' को भी शामिल किया। स्नातक स्तर पर किसी विश्वविद्यालय द्वारा अनुवाद-प्रशिक्षण दिए जाने का यह सम्भवतः प्रथम प्रयास है। तर्क-वितर्क के रूप में यह बात अलग हैं कि स्नातक-पूर्व स्तर पर अनुवाद का प्रशिक्षण कहाँ तक सार्थक सिद्ध हुआ है, लेकिन इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि इस विश्वविद्यालय की अध्ययन सम्बन्धी लचीलेपन की व्यवस्था के कारण विज्ञान, वाणिज्य अथवा कला में ऑनर्स/सामान्य अध्ययन करने वाला कोई भी विद्यार्थी स्नातक उपाधि कार्यक्रम के एक हिस्से के रूप में अनुवाद पाठ्यक्रम के एक प्रश्न-पत्र का चयन कर सकता है।

विश्वविद्यालय स्तरीय प्रयासों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इन सभी शिक्षण संस्थाओं में चलाए जा रहे अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम काफी उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

8.6.2 स्वैच्छिक प्रयास

देश में स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम आरम्भ करने के प्रयास भी नजर आते हैं। इनमें पुणे की महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, तिरुवनन्तपुरम स्थित केरल हिन्दी प्रचार सभा, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, नई दिल्ली स्थित भारतीय अनुवाद परिषद और नई दिल्ली सान्ध्यकालीन हिन्दी संस्थान (भारतीय विद्या भवन), नई दिल्ली आदि के नाम विशेष तौर पर उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार की स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा अनुवाद प्रशिक्षण के स्नातकोत्तर स्तर के स्वतन्त्र कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। भारतीय अनुवाद परिषद और भारतीय विद्या भवन द्वारा संचालित अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद से सम्बन्धित स्नातकोत्तर डिप्लोमा कार्यक्रम भारत सरकार से मान्यता प्राप्त हैं। सरकारी नौकरियों में अनुवादक अथवा विश्वविद्यालयों में अनुवाद अध्ययन में प्राध्यापक/असिस्टेण्ट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए ये डिप्लोमा मान्य हैं। इन संस्थाओं से डिप्लोमा प्राप्त अनेक अनुवादक, हिन्दी अधिकारी, अनुवाद अधिकारी अथवा प्राध्यापक (अनुवाद अध्ययन) के पदों पर काम कर रहे हैं। इस तरह कहा जा सकता है कि स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा अनुवाद प्रशिक्षण सम्बन्धी स्वतन्त्र अध्ययन कार्यक्रम चलाने की दिशा में सराहनीय प्रयास हुआ है।

दूसरी ओर, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ने अपनी राष्ट्रभाषा विशारद, राष्ट्रभाषा प्रवीण आदि परीक्षाओं में अनुवाद तथा प्रशासनिक पत्राचार के पर्चे रखे हैं। सम्भवतः अन्य स्वैच्छिक संस्थाओं ने भी इसी तरह के प्रयास किए होंगे और अनुवाद को अपने अन्य अध्ययन कार्यक्रमों में शामिल किया होगा।

8.6.3 अन्य सरकारी प्रयास

राजभाषा हिन्दी के विकास में अनुवाद की अपरिहार्य आवश्यकता और इसके बढ़ते हुए महत्त्व को स्वीकार करते हुए सरकार ने भी इस दिशा में अनेक प्रयास किए। आजादी के बाद सरकारी स्तर पर जहाँ अनुवाद कार्य करने के लिए सुनियोजित सरकारी संगठन की आवश्यकता महसूस की गई वहीं सरकारी स्तर पर अनुवाद प्रशिक्षण की जरूरत को महत्त्व दिया गया। भारत सरकार के असांविधिक साहित्य (मैनुअल, वार्षिक रिपोर्ट आदि) का अनुवाद करने के लिए सन् 1960 में तत्कालीन शिक्षा मन्त्रालय के अन्तर्गत केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की स्थापना की गई। लेकिन राजभाषा के कार्यान्वयन का दायित्व गृह मन्त्रालय का था, इसलिए इस प्रकार के अनुवाद कार्य का दायित्व भी गृह मन्त्रालय को सौंप दिया गया। गृह मन्त्रालय के अन्तर्गत 1 मार्च 1971 को केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो (Central Translation Bureau) नामक एक अधीनस्थ कार्यालय की स्थापना की गई। केन्द्र सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों, विभागों, कार्यालयों, उपक्रमों आदि के असांविधिक साहित्य के अनुवाद का दायित्व इस ब्यूरो का है। इस अनुवाद कार्य के अलावा, ब्यूरो को अनुवाद प्रशिक्षण का दायित्व भी सौंपा गया। यह भारत सरकार की वह एक मात्र संस्था है जिसका केन्द्र सरकार के राजभाषा सम्बन्धी अनुवाद कार्यों और अनुवाद में प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्य का दायित्व है।

केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो अपने अनुवाद प्रशिक्षण सम्बन्धी विभाग के जरिए सरकारी नौकरियों में काम करने वाले कर्मचारियों को अनुवाद प्रशिक्षण प्रदान करता है। ब्यूरो अनुवाद में प्रशिक्षण सम्बन्धी निम्नलिखित चार प्रशिक्षण कार्यक्रम चला रहा है :

1. तीन महीने की अवधि का अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रम;
2. इक्कीस दिवसीय अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रम;
3. पाँच-दिवसीय अल्पकालीन अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रम; और
4. पाँच कार्य-दिवसों का 'उच्च-स्तरीय/पुनश्चर्या अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रम'।

इन प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में पहला राजभाषा और अनुवाद से जुड़े एवं सरकारी नौकरी कर रहे अधिकारियों/कर्मचारियों को अनुवाद प्रशिक्षण देने वाला पूर्णकालिक पाठ्यक्रम है। यह प्रशिक्षण कार्यक्रम सन् 1973 में शुरू किया गया था। शुरू-शुरू में यह ब्यूरो के नई दिल्ली स्थित मुख्यालय में चलाया जाता था। बाद में, देश-भर में फैले केन्द्र सरकार के कार्यालयों से इसकी बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए मुम्बई (जनवरी 1985), बंगलुरु (अक्तूबर 1985) और कोलकाता (अक्तूबर 1987) में भी केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो के उप-केन्द्र खोले गए। तीन महीने की अवधि वाला यह प्रशिक्षण कार्यक्रम मुख्यालय सहित इन सभी केन्द्रों पर वर्ष में चार बार आयोजित किया जाता है। इस कार्यक्रम के जरिए प्रशिक्षुओं को मुख्य रूप से अंग्रेजी-हिन्दी प्रशासनिक अनुवाद सम्बन्धी प्रशिक्षण दिया जाता है।

ब्यूरो द्वारा इक्कीस दिन का जो अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जाता है, वह बैंकों और सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वालों को प्रशिक्षित करने के लिए है। यह प्रशिक्षण कार्यक्रम ब्यूरो के कार्यालय में आयोजित न करके उन कार्यालयों में किया जाता है जहाँ से इस प्रशिक्षण कार्यक्रम की माँग की जाती है। उस स्थिति में ब्यूरो के प्रशिक्षण अधिकारी उन कार्यालयों में जाकर अनुवाद प्रशिक्षण देते हैं।

इसके अलावा, देश के विभिन्न कार्यालयों की माँग पर वहीं पर केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो पाँच दिन की लघु अवधि का प्रशिक्षण कार्यक्रम भी चलाता है। इसके साथ-साथ ब्यूरो अपने नई दिल्ली स्थित मुख्यालय में उच्च-स्तरीय/पुनश्चर्या अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम भी चला रहा है। पाँच कार्य-दिवसों के इस कार्यक्रम में सेवाकालीन सरकारी कर्मचारी/अधिकारी प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो द्वारा चलाए जा रहे अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम, राजभाषा नीति के कार्यान्वयन की दृष्टि से प्रशासनिक अनुवाद एवं राजभाषा के क्षेत्र में काफी उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

8.7 अनुवाद प्रशिक्षण की दिशाएँ एवं स्थिति

भारत जैसे बहुभाषी और बहु-सांस्कृतिक देश में, जहाँ 1652 से अधिक बोलियाँ/भाषाएँ बोली जाती हैं और बाईस भारतीय भाषाओं को संविधान द्वारा मान्यता-प्राप्त है, अनुवाद महत्त्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है। हमारे दैनन्दिन आचार-व्यवहार से लेकर सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में अनुवाद व्याप्त है। भारत के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न भाषाओं के आधार पर अनुवाद सम्बन्धी प्रशिक्षण कार्यक्रमों की निम्नलिखित तीन दिशाएँ बनती हैं :

1. अंग्रेजी-हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. अंग्रेजी और हिन्दीतर अन्य भारतीय भाषा में/से अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम
3. भारतीय भाषाओं के बीच परस्पर अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम

सृजनात्मक एवं ज्ञानपरक साहित्य, दर्शन, व्यापार-वाणिज्य, बैंकिंग, विधि, अभियान्त्रिकी, कृषि, प्रशासन, पत्रकारिता, शिक्षा आदि क्षेत्रों में अनुवाद की अपरिहार्य आवश्यकता है। दिनोंदिन अनुवाद की बढ़ती हुई आवश्यकता को नए अर्थों एवं सन्दर्भों में समझ/स्वीकार कर देश के कई विश्वविद्यालयों एवं शिक्षण संस्थाओं द्वारा अनुवाद-प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक एवं व्यावसायिक पहलुओं को देखते हुए, इन सन्दर्भों में अनुवाद रोजगार का एक व्यापक क्षेत्र बन गया है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। इसके अलावा, भाषा के विस्तृत भूभाग के निवासियों की भाषा (जनभाषा) एवं एकता के मद्देनजर आज हिन्दी सम्पर्क भाषा के रूप में स्वीकृत है। रोजगार की वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत अंग्रेजी और हिन्दी अनुवाद की अधिक आवश्यकता होती है, अतः इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अंग्रेजी-हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद पर अधिक बल दिया जाता है। वैसे भी, आज हिन्दी भारत की राजभाषा है और अंग्रेजी सह-राजभाषा के रूप में काम कर रही है। राजभाषा अधिनियम 1963 (यथासंशोधित) की धारा 3(3) के चलते प्रशासन के क्षेत्र में दीर्घकालिक द्विभाषिकता की स्थिति बनी हुई है। इस स्थिति में प्रशासनिक काम-काज में अनुवाद की स्थिति को अनिवार्य बना दिया है, जिसके चलते औपचारिक रूप से शिक्षित-प्रशिक्षित अनुवादकों की बड़ी माँग है।

अंग्रेजी से हिन्दी अथवा हिन्दी से अंग्रेजी के अलावा, कुछेक विश्वविद्यालयों में हिन्दीतर अन्य भारतीय भाषा में अनुवाद सम्बन्धी प्रशिक्षण कार्यक्रम भी चल रहे हैं। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश स्थित अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में 'उर्दू अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा' कार्यक्रम चलाया जा रहा है, कर्नाटक विश्वविद्यालय में कन्नड़ में स्नातकोत्तर डिप्लोमा कार्यक्रम चलाया जा रहा है।

भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद के महत्त्व को स्वीकार करते हुए इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ ने बंगला-हिन्दी अनुवाद और मलयालम-हिन्दी अनुवाद में जुलाई 2009 से दो स्नातकोत्तर सर्टिफिकेट कार्यक्रम शुरू किए। विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच अन्तर्भाषायी गतिविधियाँ बढ़ाने की दृष्टि से इस प्रकार के अध्ययन कार्यक्रमों का विशेष महत्त्व है। इससे देश की विभिन्न भाषाएँ मुख्य धारा से जुड़ेंगी। और, देश में सामासिक संस्कृति को बढ़ावा देने की दृष्टि से इस प्रकार के अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रमों की उपादेयता निर्विवाद है।

8.8 अनुवाद प्रशिक्षण के सोपान/सन्दर्भ

अनुवाद प्रशिक्षण का मूल लक्ष्य प्रशिक्षु के अनुवाद सम्बन्धी ज्ञान में अभिवृद्धि करना, अनुवाद कार्य सम्बन्धी कुशलता में बढ़ोतरी करना होता है, जिससे वे अपने अनुवाद कार्य को प्रभावी बना सकें। इसके अन्तर्गत अनुवाद अध्ययन एवं अनुवाद कार्य के बारे में शिक्षा देना शामिल है। इस प्रशिक्षण से अनुवाद के प्रति व्यक्ति की निष्ठा एवं मनोबल में बढ़ोतरी होने के साथ-साथ उसका दृष्टिकोण भी व्यापक होता है। इस दृष्टि से अनुवाद प्रशिक्षण का बड़ा महत्त्व है। कौशल और अन्य भाषा सम्बन्धी ज्ञान के मद्देनजर अनुवाद प्रशिक्षण के आयामों पर विचार करने पर हम पाते हैं कि इस प्रशिक्षण के निम्नलिखित चार सोपान हैं :

1. भाषा प्रशिक्षण के अंग के रूप में अनुवाद प्रशिक्षण
2. एक कौशल के रूप में अनुवाद प्रशिक्षण

3. स्वतन्त्र अध्ययन क्षेत्र की दृष्टि से अनुवाद प्रशिक्षण
4. कार्यशाला प्रशिक्षण

8.8.1 भाषा प्रशिक्षण के अंग के रूप में अनुवाद प्रशिक्षण

पूर्व में हम जान चुके हैं कि भाषा शिक्षण भी अनुवाद का एक प्रमुख क्षेत्र है। भाषा शिक्षण केवल 'शिक्षण विज्ञान' ही नहीं होता, इसमें भाषा विशेष के भाषायी बिन्दुओं और कुशलताओं का भी समावेश होता है। इसका सम्बन्ध भाषायी कौशल (अर्थात् भाषा का श्रवण, पठन, वाचन एवं लेखन) के सन्दर्भ में प्रयोग के विकास से है ताकि व्यक्ति में भाव-ग्रहण और भाव-प्रकाशन की कुशलता विकसित हो। इस कौशल-केन्द्रित प्रक्रिया में भाषा-शिक्षण द्वारा भाषायी व्यवहार की कुशलता उत्पन्न की जाती है; भाषा सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने का कौशल विकसित किया जाता है। इस कौशल-विकास के लिए अनुवाद का सहारा लिया जाता है ताकि प्रशिक्षु कुशल भाषा-प्रयोक्ता और शैलीकार बन सके। यहाँ यह भी ध्यान रखना होगा कि भाषा शिक्षण में अनुवाद अध्ययन के दौरान प्रशिक्षु स्वयं को व्यवसाय से अनुवादक बनाने की दिशा में अग्रसर नहीं होता। वह स्वयं को भाषा सीखने तक ही सीमित रखता है, अनुवाद में पारंगत होना उसका उद्देश्य नहीं होता।

मनुष्य की यह सहज प्रवृत्ति होती है कि वह एक ही भाषा सीखकर सन्तुष्ट नहीं होता, उसे अन्य भाषा सीखने की जरूरत पड़ती है। एक भाषा के प्रयोग से सम्प्रेषण का क्षेत्र सीमित बन जाता है। मातृभाषा की शिक्षा मनुष्य के अन्य विषयों की शिक्षा के माध्यम और स्वतन्त्र विषय के रूप में ज्ञानार्जन का साधन बनती है। मातृभाषा मनुष्य के सर्वांगीण विकास का प्रमुख आधार है। अन्य भाषा की शिक्षा शिक्षार्थी के जीवन के विविध क्षेत्रों में सहायक होती है—भले ही वह क्षेत्र व्यावसायिक हो अथवा ज्ञानार्जन से सम्बन्धित। वैसे यह अन्य भाषा देशी भी हो सकती है और विदेशी भी। जीवन की आवश्यकताएँ मनुष्य को औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से मातृभाषा से इतर भाषाएँ सीखने को मजबूर करती हैं, प्रेरित करती हैं। लोगों में भाषा/भाषाएँ सीखने की प्रवृत्ति एवं परम्परा हर देश-समाज में सदा से विद्यमान रही है। मानव-जीवन के विकास-क्रम में प्रत्येक युग में ऐसा होता आया है। धर्म-प्रचार, ज्ञानार्जन, वाणिज्य, व्यापार, पर्यटन, शिक्षण आदि के सन्दर्भ में यह आसानी देख जा सकता है। आज के भूमण्डलीकृत विश्व में तो बहुभाषी ज्ञान, कई भाषाओं का कार्यसाधक ज्ञान अपरिहार्य हो गया है; और इन प्रसंगों का सीधा सम्बन्ध अनुवाद जुड़ता है।

किसी बहुभाषी समाज में देशी एवं अन्य भाषा का शिक्षण आंशिक अथवा पूर्णतया अनौपचारिक भी हो सकता है, किन्तु विदेशी भाषा का शिक्षण सामान्यतया औपचारिक स्थितियों में ही सम्भव हो पाता है। अन्य भाषा में भाषिक तत्वों (ध्वनि, रूप-रचना, शब्द भण्डार और वाक्य संरचना) के सम्बन्ध में भिन्नताएँ हो सकती हैं और विभिन्न भाषायी तत्वों में भिन्न सांस्कृतिक तत्त्व भी समाहित हो सकते हैं। भाषा-शिक्षण में सभी तत्त्व बाधक बन जाते हैं। 'व्यतिरेकी भाषाविज्ञान' नामक भाषाविज्ञान की उपशाखा द्वारा इन समस्याओं के आलोक में अन्य भाषा की भाषायी कुशलता विकसित कर पाना सम्भव हो पाता है, जो वस्तुतः अनुवाद पर ही आधारित होता है।

इतर भाषा के ध्वनि, शब्द, अर्थ और संरचना जैसे भाषायी घटकों की पर्याप्त जानकारी प्रयोक्ता की मातृभाषा अथवा बोध की भाषा में प्रस्तुत करने के लिए अनुवाद एक माध्यम है। अन्य भाषा के भाषायी घटकों की जानकारी के साथ-साथ व्यावहारिक दक्षता के सृजन में भी अनुवाद का ही सहारा लिया जाता है। भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण में व्याकरण-अनुवाद विधि; प्रत्यक्ष विधि; संरचना विधि एवं श्रवण-वाचन विधि; अभिक्रमित स्वाध्याय विधि आदि में से कोई भी विधि अपनाई जाए, उसमें प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अनुवाद की उपस्थिति रहती ही है। भाषा शिक्षण-प्रशिक्षण में अनुवाद की अनिवार्यता के कारण ही अनुवाद को भाषा-शिक्षण का अंग स्वीकार किया जाता है। अर्थात् भाषाविज्ञान सम्बन्धी औपचारिक प्रशिक्षण में 'अनुवाद' को भी शामिल किया जाता है। देश-विदेश की अनेक शिक्षण संस्थाएँ भाषाविज्ञान सम्बन्धी प्रशिक्षण कार्यक्रम चला रही हैं। जिनमें अनुवाद सम्बन्धी प्रशिक्षण भी शामिल है। उदाहरण के लिए आगरा स्थित केन्द्रीय हिन्दी संस्थान द्वारा चलाए जा रहे 'एक वर्षीय पोस्ट एम.ए. अनुप्रयुक्त हिन्दी में स्नातकोत्तर डिप्लोमा' कार्यक्रम को देखा जा सकता है, जिसमें भाषाविज्ञान सम्बन्धी विभिन्न प्रश्न-पत्रों के साथ-साथ एक अनुवाद विषयक प्रश्न-पत्र भी है। इसी प्रकार दिल्ली विश्वविद्यालय के एम.ए. हिन्दी अध्ययन कार्यक्रम में अनुवाद का एक वैकल्पिक प्रश्न-पत्र भी है।

8.8.2 एक कौशल के रूप में अनुवाद प्रशिक्षण

अनुवाद को एक कौशल के रूप में सीखने के लिए भी अनुवाद प्रशिक्षण दिया जाता है। इस अवधारणा के मूल में अनुवाद को कला के रूप में स्वीकार करने का भाव निहित है। वास्तव में अनुवाद के प्रशिक्षण और अभ्यास से अनुवादक की अनुवाद-कला में निखार और संयम आता है। यहाँ इसे अंग्रेजी की इस लोकोक्ति के सन्दर्भ में देखा जा सकता है कि practice makes a person perfect. अनुवाद प्रशिक्षण से अनुवादक की अनुवाद सम्बन्धी प्रतिभा में दक्षता विकसित हो सकती है। इस दक्षता को ही अनुवादक का शिल्प अथवा कौशल (craft) का गुण माना जाता है। यह शिल्प अपने व्यापक अर्थ में कला की ही एक अवधारणा है क्योंकि अलग-अलग दिखाई देने पर भी तत्त्वतः ये एक-दूसरे से भिन्न नहीं। लेकिन, इसमें भी कोई दो राय नहीं कि नैसर्गिक प्रतिभा कला के रूप में उद्घाटित होती है। इस दृष्टि से अनुवादक 'कलाकार' नहीं है किन्तु उसे इस अर्थ में कलाकार कहा जा सकता है कि वह एक भाषा में व्यक्त की गई कलाकार की आत्माभिव्यक्ति को अपने में उतारकर, उससे आत्म-साक्षात करते हुए, उसे तटस्थ भाव से दूसरी भाषा में पुनर्सृजित कर देता है। उसका यह कर्म 'पुनरुत्पादक' कर्म है, वह 'पुनरुत्पादक कलाकार' है। इसीलिए तो यह कहा जाता है कि कला सृजन है और अनुवाद उसका पुनर्सृजन। इस प्रकार, अनुवाद प्रशिक्षण एवं अभ्यास-साध्य 'उपयोगी कला' (functional art) है।

अनुवाद-कौशल विकसित करने के लिए भी अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया जाता है। यानी अनुवाद प्रशिक्षण के जरिए व्यक्ति में अनुवाद कौशल विकसित करना इसका मूल मन्तव्य और गन्तव्य होता है। व्यक्ति इस दक्षता को हासिल करके व्यवसाय से अनुवादक, अनुवाद अधिकारी आदि बन सकता है।

अनुवाद मूलतः एक स्वैच्छिक क्रिया है, 'स्वान्तः सुखाय' है। लेकिन व्यवहार-जगत में इसकी अनिवार्यता ने इसे व्यावसायिकता का रूप दे दिया है। आज, यह अर्थोपार्जन का जरिया भी बन चुका है। आज शासन-प्रशासन, ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों, शिक्षण-जगत, पर्यटन, विधि, साहित्य, पत्रकारिता और जनसंचार माध्यमों, बैंकिंग, बीमा आदि, मानव जीवन से सम्बन्धित हर क्षेत्र में अनुवाद आवश्यक बन गया है। भारत जैसे बहुभाषिक देश में यह अनिवार्य आवश्यकता है। आजादी के बाद और विशेष तौर पर सन् 1960 के दशक में राजभाषा अधिनियम पारित होने के पश्चात संघ के सरकारी कामकाज में द्विभाषिकता की स्थिति से देश में अचानक बड़े पैमाने पर अनुवादकों की आवश्यकता हुई। इससे रोजगार के रूप में अनुवाद की सम्भावनाओं में हुई वृद्धि आज भी जारी है। रोजगार के रूप में आज अनुवाद का विशिष्ट स्थान है। बड़ी संख्या में अनुवादकों की जरूरतों के मद्देनजर उन्हें अनुवाद-कार्य में दक्ष करने के लिए शिक्षण संस्थाओं में एवं अन्य सरकारी प्रयासों से विधिवत अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किए गए। देश में विभिन्न स्तरों पर अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू करने की दिशा में किए गए प्रयासों पर हम पूर्व में विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। 'अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा', 'अनुवाद में डिप्लोमा' जैसे कार्यक्रम से अनुवाद कौशल विकसित करने के आधार बने। प्रशिक्षित व्यक्तियों की अनुवादक, अनुवाद अधिकारी जैसे पदों पर नियुक्ति सम्भव हुई। ये प्रशिक्षण अनुवाद को कौशल मानकर दिए जाते हैं, इससे अनुवाद-कार्य का कौशल विकसित होता है, अनुवाद-कला परिमार्जित होती है, अनुवादक की गति और दक्षता बढ़ती है।

8.8.3 स्वतन्त्र अध्ययन क्षेत्र की दृष्टि से अनुवाद प्रशिक्षण

अनुवाद प्रशिक्षण का 'अनुवाद अध्ययन' सम्बन्धी शैक्षिक सन्दर्भ भी है। यानी इसके अन्तर्गत अनुवाद को स्वतन्त्र अध्ययन क्षेत्र मानकर उससे सम्बन्धित शिक्षण-प्रशिक्षण शामिल करना निहित है। अनुवाद प्रशिक्षण का इतिहास अधिक पुराना नहीं है, एक विषय के रूप में 'अनुवाद अध्ययन' का शिक्षण-प्रशिक्षण तो और भी नया है। इससे पहले अनुवाद को 'भाषा-शिक्षण' (Language learning) के लिए व्याकरण-अनुवाद पद्धति (Grammar-Translation) के रूप में अथवा 'तुलनात्मक साहित्य' (Comparative Literature) अथवा 'व्यतिरेकी विश्लेषण' (Comparative Analysis) के एक अंश के रूप में अध्ययन का विषय बनाया जाता रहा है। इसके साथ-साथ यह अनुवादकों के कौशल विकास का भी अंग रहा है। भाषा शिक्षण के अंग एवं एक कौशल के रूप में अनुवाद प्रशिक्षण पिछले दशक

के उत्तरार्ध की उपज है। एक 'नए शैक्षिक अनुसन्धान क्षेत्र' के रूप में अनुवाद अध्ययन सम्बन्धी शिक्षण-प्रशिक्षण एकदम अधुनातन है। इस प्रकार के प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में शिक्षाविद तैयार करना है। जनसंचार माध्यमों, पर्यटन, सांस्कृतिक अध्ययन, राजनय, सृजनात्मक लेखन आदि क्षेत्रों में अध्यापन करने की दृष्टि से भी इसका महत्त्व है। विविध अभिकरणों में अनुवादक/दुभाषिया आदि की सेवा पाने की मंशा से यह रोजगारोन्मुख शिक्षा है।

भारत में सबसे पहले लखनऊ विश्वविद्यालय ने 'एम.ए., हिन्दी अनुवाद' कार्यक्रम की शुरुआत करके इसे स्वतन्त्र अध्ययन क्षेत्र के रूप में अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया था। आज देश के अनेक विश्वविद्यालयों में अनुवाद में एम.ए. जैसे कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इनमें–इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, अन्नामलाई विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय (इन्दौर), हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय (शिमला), हैदराबाद विश्वविद्यालय, महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय (वर्धा), गुजरात विद्यापीठ, विश्वभारती विश्वविद्यालय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आज देश की कई शिक्षण संस्थाओं में अनुवाद एवं अनुवाद अध्ययन में शोध कार्य समेत विभिन्न स्तर की पढ़ाई हो रही है। अन्नामलाई विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, हैदराबाद विश्वविद्यालय, कन्नड़ विश्वविद्यालय (हम्पी), महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय (वर्धा) आदि में अनुवाद में एम.फिल. कराई जा रही है। इसी प्रकार, हैदराबाद विश्वविद्यालय, कन्नड़ विश्वविद्यालय (हम्पी), महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय (वर्धा) आदि में अनुवाद में पी-एच.डी. भी कराई जा रही है।

इस दिशा में इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के प्रयास भी उल्लेखनीय हैं। अनुवाद को स्वतन्त्र अध्ययन क्षेत्र में रूप में मान्यता प्रदान करते हुए विश्वविद्यालय ने सन् 2007 में 'अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ' (School of Translation Studies and Training) स्थापित की। सन् 2009 से विद्यापीठ में पूर्णकालिक अनुवाद प्रशिक्षण एवं 'अनुवाद अध्ययन में एम.ए.' की पढ़ाई शुरू हुई, दूर शिक्षा पद्धति के जरिए भी यह कार्यक्रम-तैयार किया गया है। अब देश के किसी भी भाग में विद्यार्थी घर बैठे अनुवाद अध्ययन में एम.ए. कार्यक्रम को कर सकते हैं।

8.8.4 कार्यशाला प्रशिक्षण

अनुवाद कार्यशाला का आयोजन अनुवाद प्रशिक्षण का एक प्रभावकारी सोपान है। इसमें प्रतिभागियों को अनुवाद का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रशिक्षण देने की बेहतरीन पद्धति है। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षुओं को सम्बन्धित विषय की सैद्धान्तिक जानकारी देकर अनुवाद हेतु सामग्री उपलब्ध कराई जाती है। प्रशिक्षु उस कार्यशाला में ही पाठ का अनुवाद करते हैं और फिर अनूदित पाठ पर चर्चा की जाती है, अनुवाद का मूल्यांकन-संशोधन किया जाता है। किसी-किसी कार्यशाला में यह भी सम्भव होता है कि प्रशिक्षुओं को अनूद्य सामग्री पहले ही उपलब्ध करा दी जाए, वे घर से अनुवाद कर ले आएँ और कार्यशाला में उस अनुवाद पर चर्चा की जाए। इस स्थिति में अपेक्षा की जाती है कि अनुवाद कार्य प्रशिक्षु द्वारा ही किया गया हो।

उल्लेखनीय है कि कार्यशाला पद्धति द्वारा प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रम अल्पकालीन होते हैं। ये कार्यक्रम उन लोगों के लिए लाभदायक सिद्ध होते हैं जो अनुवाद में रुचि रखते हैं, स्वतः प्रेरणा से अनुवाद करते हैं या फिर कहीं अनुवाद के क्षेत्र में सेवारत हैं और अपनी दक्षता बढ़ाना चाहते हैं। ये कार्यक्रम प्रशिक्षुओं को अनुवाद कला में पारंगत करने के लिए आयोजित नहीं किए जाते, इनका प्रयोजन उन व्यक्तियों को अनुवाद करना सिखाना भी नहीं है जो अनुवाद बिल्कुल नहीं जानते या बहुत कम जानते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए पूर्णकालिक अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम ही उपयुक्त होंगे। ऐसी कार्यशालाएँ उन व्यक्तियों के लिए उपयोगी होती हैं, जिनमें अनुवाद की कार्यसाधक क्षमता है, पर दक्षता नहीं है। आज प्रशासन के अलावा उद्योग जगत, जनसंचार माध्यमों, शिक्षण संस्थाओं, प्रकाशन उद्योगों, पर्यटन आदि अनेकानेक क्षेत्रों में अनुवादकों की बड़ी माँग है। ऐसे में कार्यशाला आयोजित कर व्यावहारिक प्रशिक्षण के जरिए प्रशिक्षुओं को अनुवाद की बारीकियों, समस्याओं-सीमाओं का कौशल बताया जाता है। वे इन पक्षों को ध्यान में रखकर ही अनुवाद कार्य में प्रवृत्त रह सकते हैं। कार्यशाला प्रशिक्षण से उनमें दक्षता के साथ-साथ यह आत्मविश्वास पैदा होता है कि वे अपने अर्जित ज्ञान एवं प्राप्त प्रशिक्षण के आधार पर बेहतर अनुवाद कर सकें।

प्रशिक्षण के दौरान योग्य, कुशल, कमतर, अकुशल व्यक्तियों की जाँच हो जाती है। कहा जा सकता है कि अनुवाद-प्रशिक्षण परोक्ष रूप में कुशल एवं अकुशल व्यक्तियों के बीच विभाजक रेखा भी खींचता है।

प्रशिक्षण द्वारा प्रशिक्षु अनुवाद को ज्ञानार्जन एवं रोजगार के साधन की तरह अपनाता है। अनुवाद इस समय अर्थोपार्जन का प्रमुख माध्यम बन गया है। अनुवाद अब केवल स्वान्तः सुखाय अथवा बौद्धिक अभ्यास मात्र नहीं है, इसे एक व्यवसाय का दर्जा मिल चुका है।

सचाई है कि आज के प्रतिस्पर्धी समय में धनोपार्जन के लिए केवल वही व्यक्ति अनुवाद-क्षेत्र में टिका रह सकता है जो छाया-कलुषित अनुवाद न कर अनुवाद-कर्म का मर्म समझे और अनूदित कृति में मूल का आनन्द दिला सके। यह सारा कुछ अनुवाद-प्रशिक्षण से सम्भव है, इससे प्रशिक्षु का अपने कार्य के प्रति सम्मान-बोध और समर्पण-भाव भी उमड़ता है, उनकी कार्य-क्षमता बढ़ती है।

चूँकि अनूदित कृति में अनुवादक मूल लेखक के मनोभावों को अपनी भाषा में व्यक्त करते हैं, इसलिए प्रशिक्षण में भाषाविज्ञान के पक्ष पर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया जाता है। प्रशिक्षण द्वारा प्रशिक्षु भाषा के सम्प्रेषणात्मक पक्ष को गहराई से जान लेता है और उसे सफलतापूर्वक व्यवहार में लाता है। इस प्रकार अनूदित कृति की प्रस्तुति में प्रयुक्त भाषा, सीखी गई भाषा और भाषा-कौशल के न्यायोचित मूल्यांकन का माध्यम बनती है।

प्रशिक्षण के दौरान प्रशिक्षुओं को भाषा एवं अनुवाद से सम्बद्ध संस्थाओं की जानकारी मिलती है। उदाहरण के तौर पर, अंग्रेजी-हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद का प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले व्यक्ति को प्रशिक्षण के माध्यम से पता चल जाता है कि भारत सरकार की संस्था 'केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय/वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग' विभिन्न भाषाओं में शब्दकोश तैयार किए जाते हैं। भारत सरकार के कार्यालय 'केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो' द्वारा केन्द्र सरकार के कार्यालयों, उपक्रमों, उद्यमों के हिन्दी से सम्बन्धित कर्मचारियों को अनुवाद सम्बन्धी प्रशिक्षण दिया जाता है।

अनुवाद प्रशिक्षण की यह बड़ी देन है कि देश की भावी पीढ़ी व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त कर व्यावहारिक निपुणता हासिल करती है, उनमें आत्म-विश्वास पैदा होता है। प्रशिक्षित अनुवादक साहित्य, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की अपेक्षाओं-सम्भावनाओं के मनोनुकूल कार्य करने की दिशा में ज्ञान एवं प्रशिक्षण का सदुपयोग भी कर पाता है।

8.9.2 प्रशिक्षण संस्था/व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में महत्त्व

भारत में सरकारी प्रयासों, विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा अनुवाद-प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। वैसे भारत के मुकाबले अन्य देशों ने इस क्षेत्र में काफी प्रगति की है। वहाँ धार्मिक, साहित्यिक एवं ज्ञान-साहित्य में अनुवाद-प्रशिक्षण दिया जाता है। चूँकि ज्ञान-साहित्य का क्षेत्र विशाल है, इसलिए अलग-अलग तकनीकी विषयों के लिए प्रायः अलग-अलग प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि जल्दी ही अनुवाद-प्रशिक्षण कार्यक्रमों की संख्या आशातीत बढ़ोतरी होगी। अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रमों की बढ़ती हुई ख्याति से प्रशिक्षण सेवा में संलग्न व्यक्तियों/संस्थाओं की सक्रियता भी बढ़ी है। अनुवाद के विभिन्न आयामों पर केन्द्रित कई ग्रंथों के प्रकाशन हुए। संगोष्ठियों, सम्मेलनों में इस दिशा में गम्भीरतापूर्वक विचार हुआ। प्रशिक्षण से जुड़ी संस्था एवं प्रशिक्षक लोकमान्य हुए। केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो (भारत सरकार) द्वारा केन्द्र सरकार के सभी कार्यालयों, उपक्रमों एवं उद्यमों कार्यरत हिन्दी से सम्बद्ध कर्मचारियों के लिए संचालित तीन मास का अनुवाद प्रशिक्षण अति चर्चित है। इस कार्यक्रम के कारण केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो की बड़ी ख्याति है। इस दौरान संस्था एवं व्यक्ति की अपनी प्रशिक्षण प्रतिभा एवं क्षमता का भी विकास होता है, वे उपलब्ध अपनी क्षमता का सदुपयोग करते हुए प्रशिक्षुओं की समस्या का निदानात्मक प्रयास भी करते हैं।

8.9.3 समाज, राष्ट्र एवं विश्व के परिप्रेक्ष्य में महत्त्व

अध्ययन-अध्यापन के विषय (discipline) के रूप में पूरी दुनिया में अनुवाद को स्वीकृति मिल चुकी है। तथ्य है कि एक भाषा के सन्देश, भाव या विचार को दूसरी भाषा में अभिव्यक्ति देने का एक मात्र साधन अनुवाद है; भिन्न भाषा-भाषी समाज की संस्कृति, रीति-रिवाज आदि का परस्पर विनिमय अनुवाद द्वारा ही सम्भव है। इसी प्रकार, विभिन्न देशों के बीच विचार-विनिमय, मैत्री-भाव और विश्व-साहित्य (सृजनात्मक साहित्य हो या ज्ञान-साहित्य) से परिचय भी अनुवाद द्वारा ही सम्भव है। अनुवाद के कारण ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' या 'विश्व ऐक्य' की भावना का

प्रचार-प्रसार हो पाता है। उल्लेखनीय है कि तेजी से हो रहे विकासात्मक परिवर्तनों के कारण दुनिया भर के देशों में अनुवाद का महत्त्व बहुत बढ़ा है, लोगों ने इसकी उपयोगिता समझ ली है। भिन्न-भिन्न समाजों और राष्ट्रों से सार्थक संवाद स्थापित करने हेतु अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका से आज हर कोई परिचित है। इसके द्वारा विश्व की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा और साहित्य तक पहुँचा जा सकता है। बहुभाषिक सन्दर्भ में अनुवाद की अपरिहार्य भूमिका सर्वमान्य है।

चर्चा हो चुकी है कि अनुवाद प्रशिक्षण के माध्यम से कुशल तथा योग्य अनुवादकों को पहचानना सरल होता है। इस अवदान को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी देखा जा सकता है। व्यष्टि के विकास में ही समष्टि का विकास निहित है। उत्तरोत्तर विकास का क्रम हर व्यक्ति की जागरूकता से ही सम्भव होता है, व्यक्ति के विकास से समाज का विकास होता है, फिर देश और तब विश्व एवं मानवीयता को विकास की दिशा प्राप्त होती है। प्रशिक्षित अनुवादकों की दक्षता, अर्जित ज्ञान के सदुपयोग से समाज, राष्ट्र एवं विश्व की अपेक्षाओं-सम्भावनाओं के अनुकूल कार्य हो पाता है। अनुवाद-प्रशिक्षण के क्रम में अन्य भाषाओं में हो रहे चिन्तन, अध्ययन-अनुसन्धान एवं लेखन कार्य को सार्थक ढंग से जान पाना और उसे अपनी भाषा में सम्प्रेषित करना सम्भव हो पाता है।

8.10 वर्तमान अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम : आलोचनात्मक मूल्यांकन

कोई भी कार्य अथवा कृति सर्वथा दोष-मुक्त नहीं मानी जाती, लाख सावधानी के बावजूद कुछ न कुछ कमी रह जाती है। किसी कार्य के निष्पादन में कर्ता पूर्व-प्रतिष्ठित उदाहरणों से प्रेरणा और प्रशिक्षण लेते हैं, कार्य के दौरान जब-तब अपने अनुभवों का भी इस्तेमाल करते हैं। पहले से कोई उदाहरण न होने की स्थिति में निजी अनुभव मात्र ही काम आता है, पर कई आकस्मिक कठिनाइयों के कारण कुछ कमियाँ फिर भी रह जाती हैं। अनुवाद में ऐसी पस्थितियाँ आती ही रहती हैं। साहित्यिक अथवा साहित्येतर विषयों का अनुवाद करते समय अनुवादकों को कई समस्याओं से जूझना पड़ता है, अनुवाद प्रशिक्षण के दौरान उनके सम्भावित निदान के सूत्र बताए जाते हैं। वैसे अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रशिक्षकों के समक्ष भी कई बार जटिल समस्याएँ आ खड़ी होती हैं। प्रशिक्षण कार्यक्रमों में उपस्थित इन सम्भावित समस्याओं पर विचार होना भी जरूरी है।

8.10.1 पाठ्यचर्या में विषय चयन की भिन्नता

शैक्षिक संस्थानों द्वारा संचालित अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रमों की पाठ्यचर्या में सबसे बड़ी समस्या पाठ्यचर्या में एकरूपता के अभाव और विषय-चयन की भिन्नता की है। कहीं कार्यालयी अनुवाद को प्रमुखता दी गई है तो कहीं मीडिया अथवा सृजनात्मक साहित्य अथवा व्यापार-वाणिज्य को। कहीं भाषाविज्ञान का बोलबाला है, तो कहीं कार्यालयी-प्रविधि एवं पत्रकारिता को प्रशिक्षण का प्रमुख अंग मान लिया गया है। कोशविज्ञान और विभिन्न कोशों का परिचय भी समान रूप से नहीं मिलता। पारिभाषिक शब्दावली जैसे विषय का भी समुचित महत्त्व नजर नहीं आता। इस समस्या के समाधान के रूप में आज राष्ट्र-स्तरीय आधारभूत पाठ्यचर्या तैयार करने की आवश्यकता है।

8.10.2 प्रवेश के लिए न्यूनतम अर्हता एवं प्रशिक्षण अवधि की भिन्नता

अनुवाद की बढ़ती हुई महत्ता के कारण अनुवाद-प्रशिक्षण कार्यक्रमों की संख्या दिनानुदिन बढ़ती जा रही है, पर इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्रवेश के लिए न्यूनतम अर्हता में कोई एकरूपता नहीं है। इनमें प्रवेश के लिए कहीं न्यूनतम योग्यता स्नातक उपाधि है, कहीं स्नातकोत्तर उपाधि। इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं भारतीय अनुवाद परिषद द्वारा चलाए जा रहे अनुवाद सम्बन्धी स्वतन्त्र प्रशिक्षण कार्यक्रमों में स्नातक उपाधि प्राप्त विद्यार्थी दाखिला ले सकते हैं, जबकि केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा द्वारा संचालित 'पोस्ट एम.ए. अनुवाद सिद्धान्त और व्यवहार डिप्लोमा पाठ्यक्रम' में प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता स्नातकोत्तर उपाधि है।

उल्लेख किया जा चुका है कि भाषा अध्ययन के कई कार्यक्रमों में अनुवाद को एक विषय के रूप में शामिल किया गया है। दिल्ली विश्वविद्यालय में एम.ए. हिन्दी में अनुवाद वैकल्पिक पत्र के रूप में शामिल है। इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय में स्नातक उपाधि कार्यक्रम (बी.डी.पी.) में शिक्षार्थी एक पाठ्यक्रम अनुवाद रख सकता है, जो उसके अध्ययन के तीसरे वर्ष के दौरान विभिन्न व्यवहारमूलक पाठ्यक्रमों में से एक है।

प्रवेश के लिए न्यूनतम अर्हता की भिन्नता के अतिरिक्त प्रशिक्षण कार्यावधि के स्तर पर भी भिन्नता मिलती है। किसी शैक्षिक संस्थान द्वारा एक वर्ष की अवधि का डिप्लोमा कार्यक्रम चलाया जा रहा है तो कहीं उसी अवधि का स्नातकोत्तर डिप्लोमा अथवा सर्टिफिकेट कार्यक्रम। कहीं-कहीं तो स्नातकोत्तर डिप्लोमा की अवधि दो वर्ष की भी है। कहीं यह प्रशिक्षण सप्ताह में पाँच कार्य-दिवस में प्रतिदिन औसत दो-तीन घण्टे दिया जाता है तो कहीं केवल तीन-चार सप्ताह में दो बार दो-दो घंटे की कक्षाएँ चलती हैं।

8.10.3 सिद्धान्त और व्यवहार पक्ष की अनुपात भिन्नता

उल्लेखनीय है कि अनुवाद प्रशिक्षण मूलतः व्यवहारोन्मुखी सैद्धान्तिक कार्यक्रम है। इसमें प्रशिक्षुओं को अनुवाद के सैद्धान्तिक पक्षों एवं व्यावहारिक कठिनाइयों से अवगत कराया जाता है। पर इसके अनुपात में संस्थावार भिन्नता है। कहीं सैद्धान्तिक पक्ष का विवेचन अधिक है तो कहीं व्यावहारिक पक्ष का। व्यावहारिक विवेचन की पद्धति भी भिन्न है, हर जगह पर्याप्त उदाहरणों द्वारा तर्कसंगत ढंग से विवेचन नहीं किया जाता। कहीं अनुवाद के अधुनातन सिद्धान्तों का उल्लेख है तो कहीं सिद्धान्त की चर्चा तक नहीं। कुल मिलाकर सिद्धान्त और व्यवहार की दिशा में सन्तुलन और समन्वय का अभाव है। इस प्रसंग में गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

8.10.4 सीमित सम्भावित क्षेत्रों में प्रशिक्षण एवं रोजगार की उपलब्धता

देश-विदेश में चल रहे अनुवाद प्रशिक्षण की स्थिति से स्पष्ट है कि इस समय केवल सीमित सम्भावित क्षेत्रों में ही प्रशिक्षण के अवसर उपलब्ध कराए जा रहे हैं। हालाँकि विदेशों के कुछेक शिक्षण संस्थाओं में 'साहित्यानुवाद' अथवा 'विधि अनुवाद' पर केन्द्रित प्रशिक्षण दिया जा रहा है। समय की जरूरत को देखते हुए आज विषय-केन्द्रित अनुवाद प्रशिक्षण की अहम आवश्यकता है। भारत में इस ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

रोजगार सम्भावित क्षेत्रों में इस प्रशिक्षण की बड़ी आवश्यकता है। भारत की राजभाषा भले ही हिन्दी हो, पर राजकाज में अंग्रेजी का बोलबाला है। इसलिए अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अधिक जोर अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद पर दिया जाता है। इस तरह प्रशिक्षित व्यक्ति सरकारी विभागों में अनुवादक/हिन्दी अधिकारी का पद पाने के इच्छुक रहते हैं। राजकाज के अलावा विज्ञान-प्रौद्योगिकी, सामाजिक विज्ञान एवं कृषि, पर्यटन के क्षेत्र में कुशल अनुवादकों की बड़ी जरूरत है।

8.10.5 आधार-सामग्री का अभाव

सफलतापूर्वक अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाने के लिए आधार-सामग्री की नितान्त आवश्यकता होती है। प्रशिक्षुओं के कौशल में अभिवृद्धि लाने हेतु उसकी बड़ी जरूरत है। साहित्यिक और भाषा वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं में 'अनुवाद' पर लेखादि बीसवीं शताब्दी में ही प्रकाशित होने लगे थे। हिन्दी में सन् 1964 में अनुवाद पर पहली स्वतन्त्र पुस्तक 'अनुवाद कला : कुछ विचार' प्रकाशित हुई। इसके बाद से लेकर अब तक अनुवाद पर कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। अंग्रेजी और हिन्दी में अनुवाद को कला अथवा सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठापित करने वाली, इनके विभिन्न पक्षों को उजागर करने वाली शताधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, फिर भी इनका मानक स्वरूप स्थिर नहीं हुआ है।

वस्तुस्थिति यह है कि 'अनुवाद' के क्षेत्र में होने वाले अनुसन्धानों एवं अधुनातन सिद्धान्तों से परिचय कराने वाली गम्भीर पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का अभाव है। 'अनुवाद' विषय के अधुनातन सिद्धान्तों से परिचय कराने वाले लेखों को विभिन्न पत्रिकाएँ उतना महत्त्व नहीं देतीं, जितना कि दिया जाना अपेक्षित है। इसके अलावा, पत्र-पत्रिकाओं का भी अभाव है। वैसे, विगत चार दशकों से अधिक समय से भारतीय अनुवाद परिषद द्वारा त्रैमासिक पत्रिका 'अनुवाद' का नियमित प्रकाशन हो रहा है।

विभिन्न प्रकार के कोश अनुवाद के लिए अनिवार्य साधन है, पर विडम्बना है कि यथेष्ट संख्या में मानक गुणवत्ता वाले द्विभाषी/त्रिभाषी कोशों की अनुपलब्धता निरन्तर बनी हुई है। पर्याय कोश, मुहावरा कोश, लोकोक्ति कोश, अपशब्दकोश, संक्षिप्ताक्षर कोश आदि पर्याप्त सूझबूझ के साथ तैयार किए जाने चाहिए। इसके अलावा कम्प्यूटर कोश, ऑनलाइन कोश भी तैयार किए जाने की आवश्यकता है।

8.10.6 प्रशिक्षण की आधुनिक पद्धतियों का अभाव

अनुवाद प्रशिक्षण में आधुनिक पद्धतियों का किंचित अभाव दिखता है। अधिकांश प्रशिक्षण पारम्परिक व्याख्यान पद्धति से दिया जाता है, जबकि आज की अध्यापन पद्धति अत्याधुनिक हो गई है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी सम्बन्धी

प्रगति ने लोगों का जीवन-स्तर कई तरह से बदला है। तकनीकी उन्नति से दैनिक जीवन-व्यवहार साथ-साथ शिक्षण पद्धति में भी बदलाव आया है। कई प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अध्यापन की नई-नई तकनीकें विकसित हो रही हैं, प्रौद्योगिकी की महत्त्वपूर्ण भूमिका का लाभ लिया जा रहा है। अनुवाद प्रशिक्षण में भी आधुनिक पद्धतियाँ अपनाए जाने की आवश्यकता है ताकि वे आधुनिक सन्दर्भों में कारगर सिद्ध हो सकें।

8.10.7 दुभाषिया प्रशिक्षण का अभाव

देश-विदेश में चलाए जा रहे अनुवाद प्रशिक्षण मूलतः दो प्रकार के हैं–

1. अनुवाद सिद्धान्त एवं व्यवहार से सम्बन्धित पाठ्यचर्या के साथ डिप्लोमा/ स्नातकोत्तर डिप्लोमा, और
2. प्रशासनिक अनुवाद, साहित्यानुवाद, विधि अनुवाद जैसे विषय-केन्द्रित अनुवाद प्रशिक्षण (domain specific translation training) ।

इंगलैण्ड की मिडिलसैक्स (Middlesex) युनिवर्सिटी और युनिवर्सिटी ऑफ ईस्ट एंजलिया (नॉर्विच) में 'साहित्यानुवाद' के व्यवहार पर केन्द्रित और संयुक्त अरब अमीरात विश्वविद्यालय में 'विधि अनुवाद में प्रोफेशनल सर्टिफिकेट' कार्यक्रम चलाया जा रहा है। किन्तु देश-विदेश के अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सामान्य तौर पर दुभाषिया-प्रशिक्षण की व्यवस्था कुछेक विश्वविद्यालयों में ही है। इंगलैण्ड की युनिवर्सिटी ऑफ सूरे, ऑस्ट्रेलिया के मकार्थर इन्स्टीच्यूट ऑफ हायर एजुकेशन, एडिनबर्ग के हेरट-बाट विश्वविद्यालय और युनिवर्सिटी ऑफ माल्टा द्वारा चलाए जा रहे अनुवाद सम्बन्धी अध्ययन कार्यक्रमों में आशु अनुवाद से सम्बन्धित कार्यक्रम भी हैं। पर अन्य शैक्षिक संस्थाओं में दुभाषिया प्रशिक्षण कार्यक्रम गिने-चुने ही हैं।

'दुभाषिया' अंग्रेजी के 'इण्टरप्रेटर' (Inerpreter) का समतुल्य शब्द है। इसे 'आशु अनुवादक' और 'भाषान्तरकार' भी कहा जाता है। दुभाषिया प्रशिक्षण वास्तव में आशु अनुवाद सम्बन्धी प्रशिक्षण है। मुख्य बात यह है कि आशु अनुवाद मूलतः मौखिक अनुवाद है। यह एक भाषा के मौखिक कथन को तत्काल दूसरी भाषा में मौखिक रूप में प्रस्तुत करने की प्रक्रिया है। यह कार्य वक्तव्य दिए जाने के साथ भी किया जा सकता है और वक्तव्य के पश्चात बारी-बारी से भी। वक्तव्य देने के साथ-साथ किए जाने वाले अनुवाद को 'सहकालिक आशु अनुवाद' (simultaneous interpretation) कहा जाता है और वक्तव्य के बाद बारी-बारी से किए जाने वाले अनुवाद को 'अनुक्रमिक आशु अनुवाद' (consecutive inerpretation)। किसी भी बहुभाषा-भाषी समाज में इस प्रकार के अनुवाद की विशेष तौर पर जरूरत होती है। इसके अलावा, अन्तर्राष्ट्रीय- अन्तदेर्शीय सभा-सम्मेलनों, संगोष्ठियों, अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकलापों, संयुक्त राष्ट्र संघ एवं उसके विभिन्न संगठनों की गतिविधियों के दौरान भी इसी प्रकार के अनुवाद की विशेष तौर पर जरूरत पड़ती है। इसके अलावा, पर्यटन का क्षेत्र भी है जहाँ आशु अनुवाद की बड़ी आवश्यकता होती है।

किसी वक्तव्य का तत्काल भाषान्तरण एक चुनौती भरा कार्य है, इसमें अनुवादक को सोचने समझने, अनूदित वाक्यों की सरंचना में संशोधन-परिमार्जन करने का अवसर नहीं रहता। आशु अनुवादक को विषयान्तर, उच्चारण समस्या, स्थानीय शब्द प्रयोग जैसी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक प्रशिक्षण की जरूरत होती है। सम्भवतः इसी कारण दुनिया के कुछ विश्वविद्यालयों में केवल आशु अनुवाद में डिप्लोमा/स्नातकोत्तर डिप्लोमा/एम.ए. कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। भारत के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में तो आशु अनुवाद एक शीर्षक भर है, स्वतन्त्र डिग्री/डिप्लोमा/स्नातकोत्तर डिप्लोमा सम्भवतः कहीं नहीं है। आशु अनुवाद के महत्त्व को भी प्रमुखता से रेखांकित किया जाना चाहिए।

8.11 सारांश

द्विभाषी संस्कृतियों के बीच सेतु निर्माण की शुभेच्छा रखने वाले अनुवादकों को प्रशिक्षण द्वारा समृद्ध करना आज के समय की आवश्यकता है। इससे ज्ञान एवं संस्कृति के विषय-क्षेत्रों के साहित्य का अनुवाद कर बड़े समाज के बीच संवाद स्थापित कराने वाले विद्वत्मण्डल तैयार हो सकते हैं। आज के बहुभाषिक समाज में सार्थक संवाद के लिए अनुवाद-प्रशिक्षण का बड़ा महत्त्व है। बेहतर अनुवाद कार्य करने की दक्षता हासिल करने वाले जिज्ञासु

अनुवादकों के लिए प्रशिक्षण उपयोगी उद्यम है। इस प्रशिक्षण से अनुवाद सम्बन्धी रोजगार पाने के मार्ग प्रशस्त होते हैं। देश-दुनिया में विभिन्न प्रकार के अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा जैसे सामान्य प्रशिक्षण कार्यक्रम इसी कोटि में आते हैं; 'विधि अनुवाद', 'साहित्यानुवाद' जैसे विषय-केन्द्रित (domain-specific) भी हैं। देश की सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक स्थितियों एवं आवश्यकताओं के मद्देनजर इसकी उपयोगिता निर्धारित होती है। अनुवाद कार्य किसी जमाने में 'स्वान्तः सुखाय' भले ही रहा हो, अब यह व्यवसायोन्मुखी हो गया है। इसलिए कौशल, दक्षता, और उत्पादकता बढ़ाने की दृष्टि से प्रशिक्षण आवश्यक है।

देश-दुनिया में संचालित अनुवाद-प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रमों के अनुशीलन में जो कुछ कमियाँ दिखती हैं, वे असाध्य नहीं हैं—थोड़े-से वैषम्य को दूर कर इसे अद्यतन किया जा सकता है। तय है कि अनुवाद की गुणवत्ता में अपेक्षित सुधार लाने के लिए बेहतर प्रशिक्षण आवश्यक है। सम्बद्ध संस्था एवं व्यक्ति के दायित्व-बोध और निष्ठा से प्रशिक्षण सम्बन्धी कमियों का निराकरण सहजता से हो सकता है। निराकरण की इन पद्धतियों को अनुवाद प्रशिक्षण की उपलाब्धियों के रूप में देखा जाएगा। इस तरह हम देखते हैं कि अनुवाद-प्रशिक्षण के महत्ता सर्वसिद्ध है, इस पर समुचित ध्यान देने की एवं सुविचारित रूपरेखा के साथ इसकी प्रविधि निर्धारित करने की जरूरत है।

8.12 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. 'प्रशिक्षण' का तात्पर्य क्या है? 'शिक्षा' और 'प्रशिक्षण' में क्या साम्य-वैषम्य है?
2. अनुवाद प्रशिक्षण की क्या आवश्यकता है? अनुवाद प्रशिक्षण किसी व्यक्ति के लिए किस तरह लाभदायी है?
3. विदेशों में विभिन्न शैक्षिक संस्थानों द्वारा अनुवाद प्रशिक्षण सम्बन्धी कैसे कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं?
4. भारत में किन-किन स्तरों पर अनुवाद प्रशिक्षण के प्रयास किए गए हैं?
5. भारत के सन्दर्भ में भाषायी आधार पर अनुवाद प्रशिक्षण की कौन-सी दिशाएँ हैं? सोदाहरण उल्लेख कीजिए।
6. भाषा प्रशिक्षण के रूप में अनुवाद प्रशिक्षण से प्रशिक्षु को क्या लाभ मिलते हैं? इससे वे किन क्षेत्रों में रोजगार प्राप्त कर सकते हैं?
7. प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त अनुवाद कौशल के सहारे रोजगार के क्षेत्र में क्या सम्भावनाएँ हैं?
8. स्वतन्त्र अध्ययन क्षेत्र की दृष्टि से अनुवाद प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों के लिए रोजगार की सम्भावनाओं का उल्लेख कीजिए।
9. कार्यशाला पद्धति से अनुवाद प्रशिक्षण में अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ, इग्नू की गतिविधियों का उल्लेख करें।
10. अनुवाद प्रशिक्षण के महत्त्व पर अपने विचार लिखिए।
11. अनुवाद अध्ययन की समस्याओं का उल्लेख करते हुए अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

8.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अय्यर, एन. ई. विश्वनाथ, *अनुवाद कला,* दिल्ली, प्रभात प्रकाशन।
- गुप्त, अवधेश मोहन, *अनुवाद विज्ञान : सिद्धान्त और सिद्धि,* दिल्ली, राष्ट्रभाषा प्रकाशन।
- कुमार, सुरेश, *अनुवाद सिद्धान्त की रूपरेखा,* नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन।
- टण्डन, पूरनचन्द और सेठी, हरीश कुमार, *अनुवाद के विविध आयाम,* नई दिल्ली, तक्षशिला प्रकाशन।
- *अनुवाद (पत्रिका),* अनुवाद कला का प्रशिक्षण विशेषांक, अंक 53, नई दिल्ली, भारतीय अनुवाद परिषद।

इकाई 9 भाषा की संस्कृति और पर्यावरण

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 भाषा और समाज

9.3 भाषा और समाज का अन्तर्सम्बन्ध

9.4 संस्कृति और परिवेश

9.5 भाषा की संस्कृति और परिवेश

9.6 स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की संस्कृति और उसका परिवेश

9.7 सारांश

9.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

9.9 शब्दावली

9.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

यह इकाई अनुवाद प्रशिक्षण से सम्बन्धित है। इस इकाई को पढ़ने से अनुवाद अध्ययन में एम. ए. करने वाले शिक्षार्थियों को अनुवाद प्रशिक्षण के महत्त्व की संक्षिप्त जानकारी मिलेगी। प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- अनुवाद के सन्दर्भ में भाषा और समाज के अन्तर्सम्बन्ध को समझ पाएँगे;
- अनुवाद के सन्दर्भ में संस्कृति और पर्यावरण की भूमिका जान पाएँगे;
- जान पाएँगे कि भाषा जानने के लिए उसकी संस्कृति और पर्यावरण को जानना क्यों जरूरी है; और
- अनुवाद के लिए स्रोत एवं लक्ष्य भाषाओं की संस्कृति और पर्यावरण की जानकारी का महत्त्व जान पाएँगे।

9.1 प्रस्तावना

पाठ के इस हिस्से में अनुवाद के विभिन्न उपस्करों की जानकारी दी गई है। अब तक आप अनुवाद प्रशिक्षण का महत्त्व जान चुके होंगे। इस खण्ड में आप अनुवाद कार्य हेतु भाषा की निजी संस्कृति और परिवेश की जरूरत समझेंगे। सामाजिक सम्पर्क स्थापित करने का सबसे अच्छा माध्यम भाषा है, हर भाषा का अपने समाज से गहरा जुड़ाव होता है, लिहाजा हर भाषा का अपना एक समाज और परिवेश होता है, अपना पर्यावरण होता है। यहाँ भाषा की संस्कृति और परिवेश को जानने से तात्पर्य है भाषा को उसके मूल और पूरे चरित्र के साथ समझना। अनुवाद के लिए जिन दो भाषाओं के ज्ञान की आवश्यकता होती है वह है *स्रोत भाषा* और *लक्ष्य भाषा*। *स्रोत भाषा* वह है जिसका अनुवाद किया जाना है, जबकि लक्ष्य भाषा वह है जिसमें अनुवाद किया जाता है। इस इकाई में ज्ञात होगा कि स्रोत और लक्ष्य–भाषाओं की संस्कृति और परिवेशगत बारीकी की जानकारी क्यों जरूरी है? अनुवाद कार्य के लिए उक्त दोनों भाषाओं की संस्कृति और उसके पर्यावरण को समझना, भाषा को समग्र रूप में समझना है।

9.2 भाषा और समाज

अनुवाद करते हुए हम जिन भाषाओं का इस्तेमाल करते हैं उनका अपने समाज और अपने परिवेश (पर्यावरण) से खास तरह का रिश्ता होता है। भाषा की उत्पत्ति, विकास और उसमें आए बदलाव में समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका

होती है। इसलिए आवश्यक है कि अनुवाद करते समय हम जिन भाषाओं का इस्तेमाल करते हैं उनके उद्भव से लेकर विकास तक में समाज की भूमिका को बारीकी से समझें। भाषा और समाज के अन्तस्सम्बन्ध की सूक्ष्मतर समझ बहुत जरूरी है।

प्रमुख समाजशास्त्री इरावती कर्वे ने अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक *'किन्शिप आर्गेनाइजेशन इन इण्डिया'* में भारतीय संस्कृति को समझने के लिए जिन तीन चीजों को जरूरी माना है उनमें भाषागत प्रदेशों का गठन महत्त्वपूर्ण है। वे लिखती हैं– 'भारतीय संस्कृति के किसी भी तत्त्व को समझने के लिए तीन चीजें बड़ी जरूरी हैं। ये हैं–भाषागत प्रदेशों का गठन, जाति-व्यवस्था और परिवार संगठन।' कर्वे ने इस ओर इशारा किया है कि देश कई भाषा प्रदेशों में बँटा हुआ है। यह भाषा प्रदेश एक युनिट की तरह है। वहाँ संस्कृति और बन्धुत्व संगठन के स्तर पर एकरूपता है। एक भाषा प्रदेश में चूँकि एक भाषा को बोलने-समझने वाले लोग होते हैं, इसलिए उनमें एक तरह का अघोषित सम्बन्ध होता है। शादी-ब्याह, रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहार के स्तर पर वे आपस में जुड़े हुए होते हैं। यह पर्व-त्यौहार, बोलना-बतियाना, शादी-ब्याह उस भाषा के साथ जुड़ जाते हैं और उस भाषा की विशेषता बन कर उभरते हैं। वास्तव में संस्कृति को बाँधे रखने में भाषा का बहुत बड़ा हाथ होता है।

संस्कृति से भाषा के गहरे जुड़ाव के मद्देनजर स्पष्ट है कि भाषा का समाज से गहरा सम्बन्ध है। हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक रामविलास शर्मा भी भाषा को संस्कृति का अंग मानते हैं।

भाषा की उत्पत्ति पर ध्यान देने पर पाया जाता है कि धरती पर उपस्थित विभिन्न प्राणियों में सिर्फ मनुष्य ही है जो भाषा का इस्तेमाल कर पाता है। वैसे तो धरती के विभिन्न प्राणी भी शारीरिक संकेतों और ध्वनि संकेतों से अपना काम चलाते ही हैं, लेकिन इतना वैज्ञानिक, तार्किक और विचारवान माध्यम सिर्फ मनुष्य के पास ही है। चिड़ियों के पास, साथ रहने और खतरा देखकर भाग जाने के कुछ खास तरह के संकेत होते हैं। तोते मनुष्य के कुछ शब्दों का अनुसरण करने लगते हैं। गाय-भैंस भूख लगने पर खास तरह की ध्वनि निकालती है। लेकिन इन सभी ध्वनि-संकेतों में वैज्ञानिकता के साथ-साथ विचार का भी अभाव रहता है।

इन प्राणियों से थोड़ा अलग हटकर अगर मनुष्य भाषा की रचना कर सका है तो उसके पीछे सिर्फ दो कारण हैं। एक तो यह कि उनकी परिस्थितियाँ पशुओं से अलग हैं और दूसरा उनकी शारीरिक विशेषताएँ कुछ इस तरह की हैं कि वे ध्वनियों और संकेतों को भाषा में परिणत करने में सफल हो पाए। मनुष्य के शरीर के कुछ अंग उस खास तरह से निर्मित हैं, जिनसे वे भाषा का उच्चारण कर पाएँ। लेकिन उनकी बौद्धिकता, उनका मस्तिष्क, उनकी विवेकशीलता, उस भाषा को विचारवान बनाने में मददगार साबित हुई। अगर मनुष्य की शारीरिक विशिष्टता के साथ-साथ बौद्धिकता का सम्मिश्रण नहीं हुआ होता तो यह भाषा सिर्फ उच्चारण बन कर रह जाती, वह सार्थक नहीं बन पाती।

इन विशिष्टताओं की सहायता से मनुष्य ने भाषा की रचना अवश्य की है, और उसने अन्य प्राणियों की तुलना में खुद को सर्वोपरि अवश्य बनाया है परन्तु सिर्फ इन माध्यमों के सहारे मनुष्य भाषा को सीख नहीं सकता है। भाषा एक सामूहिक प्रक्रिया है, जिसकी उत्पत्ति समाज के बीच रहकर ही की जा सकती है। जिसे समाज के बीच रहकर ही सीखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो भाषा मनुष्य और समाज के अन्तस्संघर्ष से उत्पन्न होती है। जब बच्चा पैदा होता है, तब उसमें यह कौशल जन्म के साथ ही उपलब्ध नहीं होता है। अगर ऐसा होता तो हर बच्चा निश्चित रूप से एक ही भाषा का इस्तेमाल करता। अगर किसी बच्चे को जन्म के साथ ही जंगल में भेड़िये या अन्य पशुओं के सम्पर्क में रख दिया जाए तो वह भेड़िये या उन पशुओं की भाषा को ही अंगीकार कर लेगा। और कालान्तर में उसके लिए मनुष्यों की भाषा उसी तरह अनभिज्ञ और दुरूह हो जाएगी, जिस तरह आज मनुष्यों के लिए पशुओं की भाषा है। यही कारण है कि बच्चे का जन्म जिस समाज में होता है, वह वहीं की भाषा सीखता और बोलता है। बच्चा अगर हिन्दीभाषी क्षेत्र में जन्म लेता है तो वह हिन्दी सीखता है और तमिल या मलयालम भाषी क्षेत्र में पैदा होता है तो वह वही भाषा सीखता है। बच्चा अगर जापान के समाज में जन्म लेगा तो जापानी बोलेगा और ब्रिटेन में जन्म लेगा तो अंग्रेजी। समाज का फर्क बच्चे की भाषा में ही नहीं, बल्कि उच्चारण तक में आ जाता है। बच्चा जिस समाज, जिस परिवेश में जन्म लेता है, उसकी भाषा में वहाँ का उच्चारण आ जाता है। हिन्दीभाषी प्रदेश होने के बावजूद दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार की भाषा शैली में बड़ा फर्क है। और बच्चा अपने समाज की उस भाषा-शैली को बचपन में सीखता हुआ ही बड़ा होता है।

मनुष्य अपने परिवेश से भाषा धीरे-धीरे सीखता है, चूँकि भाषा सिर्फ उच्चारण नहीं है, उसका अपना एक अर्थ है और उसके साथ विचार जुड़ा हुआ है, इसलिए मनुष्य यह विचार अपने पूर्वजों से सीखता है। बच्चा जिस परिवेश में जन्म लेता है उस परिवेश के सारे रिश्ते-नाते, रीति-रिवाज से सम्बन्धित भाषा वह जस-का-तस सीख जाता है। गाँव के किसी बच्चे का परिवेश शहर के एक बच्चे के परिवेश से भिन्न होता है, इसलिए एक ही भाषायी क्षेत्र से होने के बावजूद उनका भाषिक स्तर समान नहीं होता। उसकी भाषा में गँवईपन, रूखापन और कोमलता आदि सब उसके परिवेश (पर्यावरण) और उसके पूर्वजों से ही आता है।

तथ्य है कि भाषा की उत्पत्ति समाज के सामूहिकता के कारण हुई है। समूह के पारस्परिक सम्बन्धों ने मनुष्य के भीतर बसी कुछ विशिष्टताओं को उभारा और भाषा का निर्माण हुआ। भाषा सामाजिक जीवन-संघर्ष से उत्पन्न होती है और हर भाषा प्रदेश का समाज अलग होता है; समाज की निजता और संस्कृति की मौलिकता उसके परिवेश को औरों से भिन्न रखती है, और दूसरों में विलय से रोकती है, उसे अलग पहचान देती है। इसलिए किसी भाषा का गम्भीर अध्ययन किए बगैर उस समाज का अध्ययन सम्भव नहीं है। सामाजिक जीवन एक गतिशील प्रक्रिया है, इसलिए समाज की आन्तरिक बनावट, समाज के विशिष्ट स्वरूप को समझे बिना उसकी भाषा, संस्कृति और परिवेश को समझना मुश्किल है।

9.3 भाषा और समाज का अन्तर्सम्बन्ध

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज के बिना वह नहीं रह सकता है, इसलिए मनुष्य द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली भाषा भी एक सामाजिक प्रक्रिया है। हर भाषा का अपना समाज होता है, इसलिए समाज के विकास और उसमें आए हर परिवर्तन का असर भाषा के स्वरूप पर भी दिखता है। भाषा एक तरह से बदले हुए समाज का आईना होती है। उसमें परिवर्तित समाज का प्रतिबिम्ब दिखता है।

साहित्य के इतिहास की परिभाषा देते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने *'हिन्दी साहित्य का इतिहास'* में लिखा है– 'जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्त वृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्त वृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चित्त वृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।' आचार्य शुक्ल जनता की जिन चित्त वृत्तियों का प्रतिबिम्ब साहित्य में देख रहे हैं वास्तव में वही समाज है। भाषा के इतिहास के साथ भी आंशिक रूप से यह लागू होता है। समाज का पूरा प्रतिबिम्ब भाषा में दिख तो नहीं सकता है, किन्तु समाज में आए बदलाव का सीधा प्रभाव भाषा के विकास पर अवश्य पड़ता है।

संस्कृत से पालि, प्राकृत, अपभ्रंश होते हुए भाषा आज जिस हिन्दी तक पहुँची है उसका कारण समाज में निरन्तर आए बदलाव ही हैं। हिन्दी भाषा में शुरुआती दौर से आज तक में एक बड़ा बदलाव आ चुका है। भारत जैसे विशाल देश के लिए यह कहावत प्रचलित है कि अगर इस देश में एक जगह से चलना शुरू किया जाए तो हर दस-बारह कोस में बोली में बदलाव महसूस होगा। लेकिन महत्त्वपूर्ण यह है कि यह बदलाव इतना धीमे-धीमे होता चला जाता है कि इसे सुनिश्चित करना असम्भव है, इस बात को कोई रेखांकित नहीं कर सकता कि किस विशेष स्थान, काल में किस कारण भाषा में कैसा परिवर्तन आया। भाषा के इतिहास में भी इस परिवर्तन का नियत बिन्दु नहीं मिलता। भाषा के विकास की प्रक्रिया समाज के विकास की प्रक्रिया की तरह उसी अनुपात में धीमी होती है।

समाज की प्रवृति जिस तरह की होती है, उस पर जिस तरह की सत्ता काबिज होती है, भाषा में बदलाव भी उसी के अनुसार होता है। सामन्ती समाज, पूँजीवादी समाज और भूमण्डलीकृत बाजारवादी समाज ने भाषा में अपने अनुरूप ही परिवर्तन किए हैं। सामन्ती समाज के पूँजीवादी बनने में उसकी गति जितनी धीमी रही होगी, भाषा में परिवर्तन भी उसी अनुपात में हुआ होगा। पर ध्यान देने की बात है कि समाज या कि भाषा के परिवर्तन की गति सदा एक-सी नहीं होती। समाज में परिवर्तन आन्तरिक और बाह्य–दोनो कारणों से होते हैं। किसी समाज और संस्कृति का टकराव जब किसी बाह्य समाज और अलग संस्कृति से होता है जो उस समाज में स्पष्ट परिलक्षित

परिवर्तन होता है। अलग संस्कृति से समाज का मिलन समाज को एक नई दिशा देता है। भारत में जब तुर्कों और मुगलों का शासन आया, तब उनके सम्पर्क से अचानक हिन्दी में फारसी शब्दों का प्रभाव बढ़ता चला गया। जब ब्रिटिशों का भारत पर कब्जा हुआ, तब अंग्रेजी शब्दों का मिश्रण हुआ। आज समाज जब बाजारवादी होता जा रहा है, तब हिंग्लिश का चलन बढ़ता जा रहा है। हिन्दी और अंग्रेजी के शब्दों को आरामदेह तरीके से मिलाकर हिंग्लिश भाषा व्यवहार में आ गई है, जो इस वैश्विक होते समाज की ही देन है। एस.एम.एस., ब्लॉग, फेसबुक, ऑरकुट जैसे शब्दों के लिए हिन्दी में कोई शब्द नहीं है और ये हिन्दी भाषा में भी जस-का-तस इस्तेमाल होते हैं।

समाज में अपने आन्तरिक अन्तर्विरोधों से आई गतिशीलता की रफ्तार धीमी होती है। लेकिन बाहरी और अलग संस्कृति के सम्पर्क में आने से समाज में एक बड़ा परिवर्तन आता है और समाज में आए इस परिवर्तन के समानुपातिक रूप से ही भाषा में भी बदलाव परिलक्षित होता है।

कारण निजी अन्तर्विरोध हो या बाह्य सम्पर्क, समाज सतत गतिशील और उर्ध्वगामी होता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास ने अपने प्रसिद्ध सिद्धान्त 'संस्कृतीकरण' में इसे ही दिखाने की कोशिश की है। उन्होंने इस सिद्धान्त को जाति के स्तर पर साबित कर बतलाया है कि हर जाति विकास क्रम में उच्चता की ओर बढ़ना चाहती है। इसी आधार पर हर समाज अपने से उन्नत संस्कृति को अपनाना चाहता है। भला हो या बुरा, पर सचाई है कि आज हमारे समाज के लिए पश्चिमी मॉडल सबसे ज्यादा अनुकरणीय है। यही कारण है कि समाज पश्चिमी संस्कृति का अनुकरण कर रहा है। समाज के इस उर्ध्वगामी विकास में भाषा उसके साथ होती है। समाज ज्यों-ज्यों विकास करता है भाषा भी सापेक्षिक रूप से साथ-साथ उर्ध्वगामी बनने की चेष्टा करती है।

भाषा का यह उर्ध्वगामी विकास भी दो स्तरों पर होता है—एक रूप के स्तर पर और दूसरा विषय-वस्तु के स्तर पर। भाषा का रूप उसकी बनावट, और शिल्प है। हर उन्नत होती भाषा अपनी संरचना को सुसंस्कृत करना चाहती है। विकसित होता समाज विषय-वस्तु के स्तर पर भी भाषा को मजबूत कर भाषा को परिष्कृत करना चाहता है।

अब तक हम जान चुके कि भाषा की उत्पत्ति का कारण समाज है, समाज और भाषा का अटूट सम्बन्ध है, भाषा के विकास से समाज का विकास जुड़ा हुआ है, समाज और भाषा में गहन-गूढ़ अन्तस्सम्बन्ध होता है। विकासशील समाज अपनी भाषा को परिष्कृत करना चाहता है। दूसरी ओर परिष्कृत भाषा विकसित समाज की एक पहचान है। समाज से भाषा के गहन जुड़ाव के कारण ही हर भाषा का अपने समाज की संस्कृति और परिवेश से जुड़ाव होता है। या कहें कि अपनी संस्कृति और परिवेश से ही भाषा की पहचान बनती है। किसी भी भाषा को उसके समाज और संस्कृति से विलग कर स्वायत्त रूप में देखना अनुचित है। समाज से अलग भाषा की स्वायत्तता सम्भव नहीं है।

9.4 संस्कृति और परिवेश

भाषा की संस्कृति और परिवेश को जानने से पहले 'संस्कृति' और 'परिवेश' का वास्तविक तात्पर्य जानना जरूरी है। दरअसल अपनी जीवन प्रक्रिया में मनुष्य का विकास—आन्तरिक और बाह्य—दोनों तरह से होता है। आन्तरिक विकास मनुष्य के चिन्तन, सोच और संस्कारों से जुड़ा होता है। मनुष्य जैसा सोचता है उसी के अनुरूप उसके संस्कार का निर्माण होता है। इस संस्कार से संस्कृति का बड़ा गहरा रिश्ता है। तथ्य है कि मनुष्य की आन्तरिक चेतना का निर्माण एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है, वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती है। हर मनुष्य अपने पूर्वजों और समकालीन संस्कृति से सहजात सीख लेता चलता है। हमारे यहाँ स्त्रियों को देवी का दर्जा दिया जाता है। बड़ों को पैर छूकर प्रणाम करने, अतिथि को देवतुल्य मानने का संस्कार हमें हमारी संस्कृति ही सिखाती है। हमारे पर्व-त्यौहार, रीति-रिवाज, धर्म ... सब के सब हमारी संस्कृति के अंग हैं। हमारा साहित्य, हमारी कला, हमारा संगीत ... हमारी संस्कृति के अवयव हैं। इन सब का निर्माण एकाएक नहीं, मद्धम-मद्धम गति से हमारी सोच में विकसित प्रक्रिया के तहत हुआ है। उल्लेखनीय है कि संस्कृति का अर्थ चिन्तन तथा कलात्मक सृजन की वे क्रियाएँ हैं जो मनुष्य के व्यक्तित्व और जीवन के लिए सीधे-सीधे उपयोगी नहीं दिखती, पर उसे रच-रच कर समृद्ध कर देती हैं। इस तरह देखें तो विभिन्न शास्त्रों, दर्शन आदि में होने वाले चिन्तन, साहित्य, चित्रांकन, कला, परहित साधन ... तमाम नैतिक आदर्शों, व्यापारों को संस्कृति की संज्ञा दी जानी चाहिए *('हिन्दी साहित्य कोश', पृ. 713)*।

मनुष्य अपने जीवन में भौतिक सुख के लिए जिन वस्तुओं का निर्माण करता है उससे उसका बाह्य विकास साफ-साफ परिलक्षित होता है। मनुष्यों द्वारा किया गया यह बाह्य विकास उसकी सभ्यता कहलाता है। यूँ इस सभ्यता का निर्माण भी संस्कृति से गुजर कर ही होता है। मनुष्य के बाह्य विकास में उसके चिन्तन का हाथ होता है। लेकिन इस चिन्तन के सहारे वह जिन बाहरी चीजों का निर्माण करता है, वे सभ्यता कहलाती हैं। मनुष्यों ने अपनी भौतिक जरूरतों के लिए मकान, गाड़ी, पँखे, ए.सी., कम्प्यूटर, मोबाइल, सड़क, बस आदि का निर्माण किया है; यह उनकी अपनी सभ्यता है। सिन्धु घाटी की सभ्यता में जो मकान, नाले, नगर मिले हैं उन्हें सिन्धु घाटी की सभ्यता कहते हैं। लेकिन वहाँ की दीवार पर मिले चित्रों के सहारे जब यह पता चलता है कि वह मातृसत्तात्मक समाज था, तो यह वहाँ की संस्कृति है। इस मातृसत्तात्मक समाज का सम्बन्ध सीधा मनुष्य की सोच, उसके चिन्तन से है।

संस्कृति और सभ्यता के इस मेल से जिस समाज का निर्माण होता है, उसी समाज का व्यावहारिक रूप परिवेश है। परिवेश पर समाज की संस्कृति और सभ्यता का सीधा फर्क पड़ता है। चूँकि समाज-दर-समाज संस्कृति और सभ्यता में बदलाव आता है, इसलिए हर समाज के परिवेश में अन्तर होता है। परिवेश का सम्बन्ध समाज की स्थानीयता से है। मनुष्य अपने समाज में जहाँ उठता-बैठता, बोलता-बतियाता है, सुख-दुख निभाता है वही उसका परिवेश होता है। मनुष्य जैसा सोचता है, जैसा उसका रहन-सहन, जैसी उसकी वेश-भूषा है, जैसा वह खाता-पीता है, जैसा उसका स्थापत्य है, जैसी उसकी शिक्षा और मानसिक स्तर है...उन सबसे मिल कर उसके परिवेश का निर्माण होता है। हर मनुष्य का अपना परिवेश होता है और हर मनुष्य द्वारा परिवेश का निर्माण होता है। वास्तव में समाज एक अमूर्त चीज है, समाज के नाम पर हमें जो दिखता है वह परिवेश ही है। इसलिए हम समाज के व्यावहारिक रूप को परिवेश कह सकते हैं।

9.5 भाषा की संस्कृति और परिवेश

भाषा के उद्भव और विकास एक सामाजिक प्रक्रिया है, इस प्रक्रिया में समाज बहुत बड़ा घटक होता है। किसी भी भाषा को समाज से अलग कर समझना सम्भव नहीं। दोनों के अन्योन्याश्रय सम्बन्धों को समझने के लिए समाज विशेष को सूक्ष्मता से समझना जरूरी है। जाहिर है कि समाज और उसके विकास की यह समझ उसके आन्तरिक और बाह्य विकास के साथ बनेगी। हम जानते हैं कि आन्तरिक विकास चिन्तन और बौद्धिकता के स्तर पर होता है और बाह्य विकास भौतिक स्तर पर। दोनों स्तरों के विकास के बारीक निरीक्षण-परीक्षण के बाद ही किसी समाज विशेष को समझा जा सकता है। स्पष्टतः समाज की सूक्ष्म समझ के साथ ही उससे गहरे तौर पर जुड़ी भाषा को भी ठीक-ठीक तभी समझा जा सकता है। हर भाषा का अपना एक समाज होता है, जो उसकी पहचान होती है। समाज की समझ बनाने के लिए संस्कृति और परिवेश की समझ की शर्त भाषा के साथ भी लागू होती है। इसे यूँ कहें कि भाषा की भी अपनी संस्कृति और अपना परिवेश होता है।

अनुवाद करते समय उपयोग में आई दोनो भाषाओं—स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा – की तह में पहुँचना, उसकी आत्मा को जानना आवश्यक होता है। इसके लिए उसकी संस्कृति और उसके परिवेश की समझ आवश्यक है। लेखक जिस भाषा में मूल पाठ रचता है, उसके संस्कार में उसके समाज की संस्कृति और जीवन-व्यवहार शामिल रहता है। अनुवाद सिर्फ शब्दार्थ नहीं होता है। यह कृति का एक भाषा से दूसरी भाषा में पुनर्सृजन है। अनुवाद के रूप में कृति विशेष का पुनःसृजन तभी सम्भव है जब अनुवादक उस भाषा को वैचारिक-दार्शनिक और सांस्कृतिक स्तर पर जानता हो। भाषा की अपनी जमीन से अनुवादक की निजता आवश्यक है।

भाषा और समाज के अमूर्त्त सम्बन्ध जटिलता को जानना बड़ी जिम्मेदारी का काम है। किसी भाषा को महज सीख कर उसके शब्दार्थ को तो समझा जा सकता है, उसके साथ आरामदेह नहीं हुआ जा सकता। पूरी भाषा को समझने के लिए उस समाज की जीवन-व्यवस्था और संस्कृति को जानना ही पड़ेगा, जिसमें समाज का सोच-विचार और संस्कार बसता है। संस्कृति और परिवेश की जानकारी के साथ ही भाषा के आन्तर्बाह्य मर्म को समझा जा सकता है। अनुवाद करते समय मूल पाठ की भाषा की ध्वनियों की समझ तभी सम्भव है। जब हम किसी विदेशी भाषा का साहित्य पढ़ते हैं, वहाँ की वेश-भूषा से अपने समाज का तालमेल बिठाने में दिक्कत होती है। उस साहित्य में कोई बेरोजगार युवक या कोई गरीब आदमी भी सूट-बूट पहने हो सकता है। भाषा

की संस्कृति और परिवेश की जानकारी रखे बगैर सिर्फ भाषा-ज्ञान से उसका ठीक-ठीक अनुवाद नहीं कर सकता। मैक्सिम गोर्की का विश्वप्रसिद्ध उपन्यास *'माँ'* या फिर उनका आत्मकथात्मक उपन्यास *'मेरा बचपन'* में ऐसे कई पात्र हैं, जो भारतीय परिवेश के होते तो कोर्ट, हैट और टाई नहीं लगाते। यह उस भाषा का अपना परिवेश है, अपनी वेश-भूषा है। महान रूसी लेखक निकोलाई गोगोल की विश्व प्रसिद्ध कहानी *'ओवरकोट'* में एक मामूली-सा आदमी ओवरकोट खरीदने के लिए जीतोड़ मेहनत करता है और वही ओवरकोट एक दिन चोरी हो जाता है। भारतीय परिवेश में एक मामूली आदमी को ठण्ड काटने के लिए ओवरकोट की ख्वाहिश असंगत प्रतीत होगी। इस *'ओवरकोट'* कहानी का अनुवाद सिर्फ उस भाषा को जानकर नहीं किया जा सकता है। उस भाषा के कोई जानकार वहाँ के परिवेश और संस्कृति को समझे बगैर यदि इस कहानी का अनुवाद हिन्दी में करे, और भारतीय परिवेश के अनुसार उसे स्वेटर या मोटी जर्सी कर दे, तो इस कहानी की आत्मा के साथ अत्याचार होगा। दो भाषाओं में यह ओवरकोट और स्वेटर या जर्सी का जो फर्क है, वह दोनों की संस्कृति और परिवेश का फर्क है। यह न केवल दोनों समाज के आर्थिक स्तर को रेखांकित करता, बल्कि दोनों समाज के जीवन-स्तर और रहन-सहन के फर्क का भी संकेत देता है, जिसे महज भाषा-ज्ञान से नहीं समझा जा सकता। यह समझ उस भाषा की संस्कृति में उतरकर ही समझा जा सकता है।

भाषा में इस्तेमाल किए गए रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहार, प्रथाएँ, रूढ़ियाँ, धर्मभीरुता ... सब के सब उस भाषा के अपने होते हैं। किसी भी भाषा के भीतर ये एक दिन, दो दिन में नहीं आ जाते, यह समाज की सतत् प्रक्रिया से आती है। भाषा के साथ समाज की सोच क्रमशः जुड़ती चली जाती है। भाषा में व्यक्त इन रीति-रिवाजों, रूढ़ियों, प्रथाओं को तब तक नहीं समझा जा सकता है जब तक उस भाषा की संस्कृति को पूरी तरह नहीं समझ लिया जाए। हिन्दी साहित्य के महान उपन्यास *'गोदान'* में गाय-दान के चित्रण का अनुवाद रूसी भाषा में करने वाला व्यक्ति तब तक नहीं समझ सकता जब तक वह उस परिवेश को न समझ ले। सम्भव है कि अनुवादक गोदान का शब्दार्थ समझ ले, पर वह भारतीय समाज के लिए उसकी गम्भीरता, महत्ता को तब तक नहीं समझ सकता जब तक वह उस समाज में गोदान की प्रथा की गम्भीरता को न समझ ले। इसी तरह फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास *'मैला आँचल'* में जिस समाज का वर्णन है उसे सिर्फ भाषा-ज्ञान से नहीं समझा जा सकता। काशीनाथ सिंह के उपन्यास *'काशी का अस्सी'* में बनारस की संस्कृति को जीवन्त रूप में दिखाया गया है, पर बनारस की संस्कृति और परिवेश को समझे बिना इसे समझना असम्भव है। जिस तरह वहाँ के जातिवाद और फक्कड़ अन्दाज को रेखांकित किया गया है उसे उस समाज से जोड़कर ही देखा जा सकता है। *'काशी का अस्सी'* में सम्बोधन के रूप में 'गुरू' शब्द का इस्तेमाल किया गया है, जो बनारस का तकियाकलाम है। उपन्यास में लिखा गया है—'गुरू' यहाँ की नागरिकता का 'सरनेम' है। न कोई सिंह, न पाण्डे, न जादो, न राम! सब गुरू! जो पैदा भया, वह भी गुरू, जो मरा वह भी गुरू!' — अगर अनुवादक बनारस की संस्कृति को नहीं जानता हो तो इसका अनुवाद 'टीचर' के सन्दर्भ में करेगा जो महज शब्दानुवाद है। बनारस की संस्कृति में 'गुरू' शब्द का इस्तेमाल फक्कड़ाने अन्दाज में किया जाता है, इस सम्बोधन को समझने के लिए बनारस की संस्कृति और परिवेश को आत्मसात करना पड़ेगा।

भाषा अपने समाज के अनुरूप अपने शब्दों के अर्थ भी बदलती है। एक ही शब्द का अर्थ अलग-अलग समाज में अलग-अलग हो सकता है। शब्दों का जुड़ाव संस्कृति और परिवेश से होता है और उसके अर्थ भी उसी के अनुसार बदलते हैं। बंगला उपन्यासकार सुनील गंगोपाध्याय का प्रसिद्ध उपन्यास *'मोनेर मानुश'* में 'कविराज' शब्द का इस्तेमाल किया गया है, जिसका हिन्दी में आशय कवि हो सकता है, लेकिन उस उपन्यास में कविराज का आशय कवि नहीं है। बंगला में पुराने वैद्यों को कविराज कहा जाता है। बंगला भाषा मात्र की जानकारी से यह सम्भव नहीं है, बंगला संस्कृति की समझ बनाकर ही कोई इस भाषिक व्यवस्था को समझ सकता है।

समाज में निरन्तर आए बदलाव को भाषा में साफ-साफ देखा जा सकता है। समाज के परिवेश में जिस तरह का फर्क पड़ता है, भाषा भी उसी रूप में बदलती जाती है। जब खड़ी बोली हिन्दी साहित्यिक गम्भीर दुनिया में अपनी ठोस जमीन तलाश रही थी, तब वह बहुत ही संस्कृतनिष्ठ और तत्सम प्रधान थी। हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों में से एक, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की कहानी *'कानों में कंगना'* की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है— 'आकाश स्वच्छ था—नील, उदार, सुन्दर। पत्ते शान्त थे। सन्ध्या हो चली थी। सुनहरी किरणें सुदूर पर्वत की चूड़ा से देख रही थीं। वह पतली किरण अपनी मृत्यु शैया से इस शून्य निविड़ कानन में क्या ढूँढ़ रही थी, कौन कहे!

किसे एकटक देखती थी, कौन जाने! अपनी लीला भूमि को स्नेह करना चाहती थी या हमारे बाद वहाँ क्या हो रहा है, उसे जोहती थी–मैं क्या बता सकूँ?'

यह भाषा आज के समय और समाज के लिए, जो हिंग्लिश अपना चुका है, असहज लगेगी। संस्कृतनिष्ठता, तत्सम प्रधानता को पीछे छोड़ उसमें अंग्रेजी के शब्दों का प्रभाव बढ़ गया है। अंग्रजी के कई शब्दों का हिन्दी में बेखटक इस्तेमाल हो रहा है। भाषा के विकास में आए इस बदलाव को समाज के बदलाव के सापेक्ष ही समझा जा सकता है। खड़ी बोली के शुरुआती दिनों की संस्कृतनिष्ठता और अब का हिंग्लिशवादी रुझान... दोनों अपने समाज की देन है, जिसे उस समाज के सम्पूर्ण परिवेश में देखना होगा। दोनों ही भाषाओं को समझने के लिए इतिहास में समाज के विकास के साथ-साथ भाषा, भाषा की संस्कृति और उसके परिवेश को समझना पड़ेगा।

स्पष्टतः अनुवाद के सन्दर्भ में महज भाषा का ज्ञान पर्याप्त नहीं है, जब तक उस भाषा विशेष की संस्कृति और परिवेश का गम्भीर ज्ञान न हो, अनुवाद में नहीं उतरना चाहिए।

9.6 स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की संस्कृति और उसका परिवेश

अनुवाद कर्म एक साथ दो भाषाओं–स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा–के बीच की क्रिया है। जिसका अनुवाद किया जाना है वह स्रोत भाषा है और जिसमें उस कृति विशेष का अनुवाद किया जाना है वह लक्ष्य भाषा है।

हम जानते हैं कि समाज के अन्तर्संघर्षों से ही उस समाज की भाषा का विकास होता है और उसी समाज से उस भाषा की पहचान होती है। अनुवाद जब दो भाषाओं के बीच की क्रिया है तब दोनों भाषाओं का अपना समाज होगा। हमने देख लिया है कि अनुवाद महज शब्दार्थ नहीं है, वहाँ भाषा की आत्मा का भी अनुवाद होता है। यह तभी सम्भव है जब हम उस भाषा विशेष के समाज, संस्कृति, परिवेश... सबको आत्मसात कर लें। भाषा से सम्बन्धित समाज को समझे बिना सार्थक अनुवाद सम्भव नहीं है। यह बात केवल स्रोत भाषा पर ही लागू नहीं होती, दोनों भाषाओं के लिए समान रूप से आवश्यक है। केवल स्रोत भाषा को सम्पूर्णता में जान लेना पर्याप्त नहीं है। लक्ष्य भाषा की संस्कृति और उसके परिवेश को जाने बगैर कोई अनुवादक मूल पाठ के परिवेश के अनुरूप अर्थ व्यक्त कर ही नहीं सकता। अनुवाद सहज, सरल और पठनीय हो इसके लिए अनूदित पाठ का लक्ष्य भाषा की संस्कृति और परिवेश के करीब लाना जरूरी है। रूसी या स्पेनिश भाषा की किसी रचना का हिन्दी अनुवाद करते हुए केवल शब्दानुवाद से काम नहीं चलेगा। स्रोत भाषा के विषय-वस्तु को ठीक-ठीक समझाने के लिए लक्ष्य भाषा में कई बार सन्दर्भ का सहारा लेना पड़ता है। ऐसा इसलिए होता है कि स्रोत भाषा के शब्द या स्थिति को लक्ष्य भाषा में सही-सही उतारना मुश्किल होता है।

अनुवादक को लक्ष्य भाषा में सन्दर्भ का इस्तेमाल तभी करना चाहिए जब वह उस भाषा की संस्कृति और परिवेश को बखूबी जानता हो। सुनील गंगोपध्याय के उल्लिखित उपन्यास *'मोनेर मानुश'* में अनुवादक द्वारा 'कविराज' शब्द की उलझन दूर करने के लिए सन्दर्भ का इस्तेमाल किया गया है। अनुवादक ने लिखा है–'कविराज का आशय कवि नहीं बंगला में पुराने वैद्यों को कविराज कहा जाता है (नया ज्ञानोदय, अप्रैल 2009, पृ.-67)।' इस अनुवाद में स्रोत भाषा में प्रयुक्त *कविराज* को लक्ष्य भाषा में हिन्दीभाषी समाज के अनुरूप बना दिया जाए, तो वक्तव्य का वैसा प्रभाव नहीं होता।

अनुवादक को स्रोत और लक्ष्य–दोनो भाषाओं में महारत होनी चाहिए। दोनो भाषाओं के रीति-रिवाजों, प्रथाओं, रूढ़ियों की सही समझ रखे बिना अच्छा अनुवाद सम्भव नहीं है। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' का अनुवादक हिन्दी भाषा के समाज को जानता हो, पर लक्ष्य भाषा के समाज और संस्कृति से परिचित न हो, तो वह गोदान की सही छवि वहाँ प्रतिस्थापित नहीं कर पाएगा। स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में रीति-रिवाजों, पर्व-त्यौहारों का अनुवाद करना, उसे समझाना दोनो भाषाओं की संस्कृति और परिवेश को जाने बिना असम्भव है। अनुवाद के सहारे विचारों की वैश्विक यात्रा में भी भाषा की संस्कृति और परिवेश का योगदान इसी तरह हो पाता है। अर्थात एक भाषा की कृति का दूसरी भाषा में पुनर्सृजन तभी सफल अनुवाद कहलाएगा जब दोनों भाषाओं की संस्कृति और परिवेश से भली-भाँति परिचित अनुवादक इतनी निष्ठा रखे कि अनूदित पाठ में स्रोत भाषा की आत्मा भी सुरक्षित रहे।

9.7 सारांश

भाषा एक सामाजिक प्रक्रिया है। समाज से अलग हटाकर किसी भाषा के समस्त प्रभावों को जानना असम्भव है। समाज के आन्तरिक विकास की परिणति संस्कृति है और समाज का बाह्य व्यावहारिक रूप परिवेश। किसी भी समाज को समझने के लिए उसकी संस्कृति और परिवेश को समझना आवश्यक होता है। इसलिए जब भाषा को समाज से जोड़कर देखा जाता है तब भाषा की संस्कृति और उसके परिवेश का अध्ययन जरूरी होता है। हर भाषा की अपनी संस्कृति और अपना परिवेश होता है।

अनुवाद दो भाषाओं के बीच की प्रक्रिया है। हर अनुवाद का आधार कम से कम दो भाषाओं से बनता है। जिस भाषा से अनुवाद किया जाना है उसे स्रोत भाषा कहते हैं और जिस भाषा में अनुवाद किया जाना है उसे लक्ष्य भाषा कहा जाता है। स्रोत भाषा के पाठ का लक्ष्य भाषा में पुनर्सृजन ही अनुवाद है। जाहिर है कि अनुवाद कार्य शुरू करने से पूर्व अनुवादकों को दोनों भाषाओं का मर्म समझना चाहिए। इसके लिए भाषा विशेष की संस्कृति और परिवेश से पूरी तरह परिचित होना आवश्यक है। एक सफल अनुवादक के लिए लक्ष्य और स्रोत दोनों भाषाओं की संस्कृति और उसके परिवेश को आत्मसात करना जरूरी है।

9.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. भाषा की उत्पत्ति और विकास में समाज की भूमिका स्पष्ट कीजिए। भाषा और समाज के बीच एक अन्तस्सम्बन्ध होता है, इस कथन की पुष्टि कीजिए।
2. अनुवाद के सन्दर्भ में संस्कृति और परिवेश से आप क्या समझते हैं? संस्कृति और सभ्यता में क्या अन्तर है?
3. अनुवाद के सन्दर्भ में भाषा की संस्कृति और परिवेश की व्याख्या कीजिए।
4. 'अनुवादक के लिए भाषा की संस्कृति और परिवेश की समझ जरूरी' विषय की व्याख्या कीजिए।
5. अनुवाद के लिए लक्ष्य भाषा और स्रोत भाषा की संस्कृति और परिवेश का ज्ञान कितना आवश्यक है?

9.9 शब्दावली

आत्मसात : अपने अधिकार में

धर्मभीरुता : धर्म से डरकर पाखण्ड करना

हिंग्लिश : अंग्रेजी मिली हुई हिन्दी

पुनर्सृजन : दुबारा से निर्माण करना

संचित : जमा किया हुआ

9.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- शर्मा, रामविलास, *भाषा और समाज,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
- श्रीवास्तव, रवीन्द्र, *हिन्दी भाषा का समाजशास्त्र,* दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन।
- कर्वे, इरावती, *भारत में बन्धुत्व संगठन,* चण्डीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी।
- वर्मा, धीरेन्द्र (संपा.), *हिन्दी साहित्य कोश,* वाराणसी, ज्ञानमण्डल लिमिटेड।
- बॉटमोर, टी. बी. अनुवाद : प्रधान, गोपाल, *समाजशास्त्र (समस्याओं और साहित्य का अध्ययन),* दिल्ली, ग्रन्थशिल्पी।
- श्रीनिवास, एम. एन., *आधुनिक भारत में जातिवाद तथा अन्य निबन्ध,* दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

इकाई 10 पाठ और भाषा विमर्श

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा का स्वरूप

- 10.2.1 व्यतिरेकी अनुवाद
- 10.2.2 स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के स्तर
- 10.2.3 स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की संरचना में अन्तर और अंशव्याप्ति
- 10.2.4 समानार्थी और समानार्थी लगने वाले कथन

10.3 विभिन्न सन्दर्भों के अनुसार भाषा के बदलते स्वरूप

- 10.3.1 भाषाओं की विविधता
- 10.3.2 जोड़ना और छोड़ना
- 10.3.3 सम्प्रेषणीयता : भाव, वाक्य विन्यास, अर्थतत्त्व आदि
- 10.3.4 संरचना

10.4 भाषा प्रयुक्ति के निर्धारक तत्त्व

- 10.4.1 शब्दावली
- 10.4.2 वाक्य विन्यास
- 10.4.3 शैली

10.5 भाषा प्रयुक्ति के आधार

- 10.5.1 औपचारिक-अनौपचारिक स्थिति
- 10.5.2 विषय क्षेत्र : प्रशासन, साहित्य, वाणिज्य, विज्ञान आदि
- 10.5.3 सम्प्रेषण का तरीका : मौखिक, लिखित
- 10.5.4 वक्ता-श्रोता या लेखक-पाठक की स्थिति

10.6 विभिन्न भाषा प्रयुक्तियाँ

- 10.6.1 प्रशासन
- 10.6.2 साहित्य
- 10.6.3 समाज विज्ञान
- 10.6.4 विज्ञान और तकनीकी
- 10.6.5 मीडिया
- 10.6.6 विज्ञापन आदि

10.7 भाषा संरचना में अनुवाद की प्रक्रिया

10.8 सारांश

10.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

10.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

यह इकाई अनुवाद प्रशिक्षण से सम्बन्धित है। इस इकाई को पढ़ने से अनुवाद अध्ययन में एम. ए. करनेवाले शिक्षार्थियों को अनुवाद प्रशिक्षण के महत्त्व की संक्षिप्त जानकारी मिलेगी। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :

- स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के स्वरूप को समझ सकेंगे;
- विभिन्न सन्दर्भों के अनुसार भाषा के बदलते स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे;
- भाषा में प्रयुक्ति के निर्धारक तत्त्वों को रेखांकित कर सकेंगे;
- विभिन्न भाषा प्रयुक्तियों से परिचित हो सकेंगे; और
- भाषा संचार में अनुवाद की प्रक्रिया बता सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

अनुवाद कार्य में स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की प्रकृति के साथ-साथ उसकी भाषिक संस्कृति और परिवेश के महत्त्व की चर्चा के बाद अब अनुवाद के दौरान शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों, वाक्य विन्यास आदि के प्रयोग में अपेक्षित सावधानियों के बारे में भी जानना जरूरी है। अनुवाद करते समय शब्द-प्रयोग की समस्या अक्सर पेश आती है। भिन्न-भिन्न जीवन स्थितियों और कार्य क्षेत्रों में भाषा-रूपों की अपनी विशेषता होती है। इसलिए पाठ की प्रकृति को समझते हुए स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा की संस्कृति के अनुरूप शब्दों, वाक्यों का चुनाव करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में दोनों भाषाओं के कथन में व्यतिरेकी विश्लेषण की जरूरत पड़ती है। इसके जरिए हम समानार्थी लगने वाले शब्दों में से सही शब्द का चुनाव करने और जोड़ने या छोड़ने का निर्णय आसानी से कर पाते हैं। शब्दों, कथनों के बीच हम भेद, अभेद और अंशव्याप्ति की पहचान कर पाते हैं। विभिन्न माध्यमों की भाषागत प्रकृति को समझते हुए अनुवाद को प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत कर पाते हैं। यह भाषा-प्रयुक्ति की एक प्रक्रिया है। इस पाठ में भाषा-प्रयुक्ति सम्बन्धी विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श किया जाएगा।

10.2 स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा का स्वरूप

हम जानते हैं कि जिसका अनुवाद किया जाता है यानी जिस भाषा में मूल पाठ मौजूद है उसे *स्रोत भाषा* कहते हैं और जिसमें अनुवाद किया जाता है उसे *लक्ष्य भाषा* कहते हैं। पिछले पाठों में लगातार इन बातों का जिक्र होता आया है। आम तौर पर अनुवाद के बारे में बात करते हुए अंग्रेजी से हिन्दी और हिन्दी से अंग्रेजी में अनुवाद पर विचार किया जाता है। इन दोनों भाषाओं की बनावट, भाषिक संस्कृति आदि से हम परिचित हैं। भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद करते हुए भी भाषिक संस्कृतियों का ध्यान रखना पड़ता है।

हम जानते हैं कि हर भाषा की अपनी संस्कृति होती है। अनुवाद में कई बार अनेक प्रसंगों, कथनों को लक्ष्य भाषा में उतार पाना कठिन होता है। ऐसे में कोशिश की जाती है कि स्रोत भाषा के कथन को लक्ष्य भाषा में अधिक से अधिक करीब लाया जाए। इसके लिए व्यतिरेकी विश्लेषण की मदद लेनी पड़ती है। निश्चय ही आपके मन में कई उदाहरण आ रहे होंगे। जैसे अंग्रेजी में अलग-अलग समय के अनुसार अभिवादन के लिए शब्द हैं–सुबह के लिए Good Morning, दोपहर के बाद के लिए Good Afternoon, शाम के लिए Good Evening, रात को Goognight, विदा लेते समय Goodbye, लेकिन हिन्दी में ऐसी औचारिकता नहीं है। किसी भी समय नमस्कार, प्रणाम, सलाम, राम राम कहा जा सकता है। यों कुछ लोग Good Morning के लिए 'सुप्रभात', Goodnight के लिए 'शुभरात्रि' और Goodbye के लिए 'अलविदा' शब्द का प्रयोग करते हैं, मगर ये अनूदित रूप हिन्दी की भाषिक संस्कृति से मेल नहीं खाते। अंग्रेजी में इन अभिवादनों का इस्तेमाल हर कोई करता है, चाहे किसान हो या सभ्य-सुसंस्कृत कहा जाने वाला व्यक्ति। लेकिन अनुवाद करते समय अगर एक किसान के मुँह से 'सुप्रभात' या 'शुभरात्रि' जैसे शब्द कहलवाए जाएँ तो सुनने-पढ़ने वाले को खटकता है। क्योंकि आम तौर पर हिन्दी समाज के किसान को 'राम राम' या 'जै रामजी की' कहते सुना जाता है। इसलिए प्रसंगों के अनुरूप इसी तरह अनुवाद किया जाए तो स्वाभाविक लगता है।

ऐसे ही रिश्ते-नातों के मामले में हिन्दी में हर रिश्ते के लिए अलग-अलग शब्द हैं। जबकि अंग्रेजी में रिश्तों का इतना विस्तार नहीं है। चाचा, ताऊ, मौसा, फूफा, मामा आदि के लिए एक ही शब्द है–Uncle, अंग्रेजी में बड़े-छोटे सभी भाई के लिए Brother और बहन के लिए Sister शब्द इस्तेमाल होते हैं। लेकिन बांग्ला में बड़े भाई को 'दादा' और बड़ी बहन को 'दीदी' कह कर सम्बोधित किया जाता है। तमिल में भाभी के लिए दो शब्द प्रचलित हैं–इनम्मा और इतिमा। 'इनम्मा' का प्रयोग लड़कियाँ अपने भाई की पत्नी के लिए करती हैं, जबकि लड़के इसके लिए 'इतिमा' प्रयोग करते हैं। जब इन शब्दों या पदों का हिन्दी या अन्य भारतीय भाषा में अनुवाद करते हैं तो मुश्किलें पेश आती हैं।

हिन्दी क्षेत्र में अक्सर विवाहिता स्त्रियों को 'सौभाग्यवती हो' कह कर आशीर्वाद दिया जाता है। सौभाग्यवती कहने से भारतीय समाज में विवाहिता स्त्री का एक पवित्र बिम्ब बनता है। अगर इसका अंग्रेजी में अनुवाद करते समय fortunate woman या lucky lady लिखें तो वह बिम्ब नहीं बन पाता। यह भाषिक संस्कृति सम्बन्धी अड़चन है। ऐसे में व्यतिरेकी विश्लेषण के जरिए शब्दों या पदों का चुनाव करना पड़ता है।

10.2.1 व्यतिरेकी विश्लेषण

तथ्य है कि अनुवाद करते समय स्रोत भाषा के शब्दों का लक्ष्य भाषा में केवल अर्थान्तरण करने से अनेक गड़बड़ियों की आशंका रहती है, स्रोत भाषा के कथनों, अभिव्यक्तियों को लक्ष्य भाषा की संस्कृति के अनुरूप लाने का प्रयास किया जाता है। ऐसे में व्यतिरेकी विश्लेषण बड़ा मददगार साबित होता है।

व्यतिरेकी विश्लेषण अंग्रेजी के कण्ट्रास्टिव एनालिसिस (contrastive analysis) से बना है। इसका अर्थ है, दो चीजों की तुलना करते हुए उनकी विषमताओं का विश्लेषण करना। अनुवाद करते हुए दो भाषाओं के कथनों के व्यतिरेक को पहचानना होता है। उसी आधार पर लक्ष्य भाषा की प्रवृत्ति के अनुरूप अभिव्यक्तियों की प्रस्तुति करनी होती है। व्यतिरेकी विश्लेषण से स्रोत भाषा के अलग-अलग अंशों के लक्ष्य भाषा में अनेक विकल्प उपलब्ध होते हैं। उनमें से अपनी भाषा की प्रकृति, कथन की भंगिमा, वातावरण आदि के अनुरूप शब्दों, वाक्यों, ध्वनियों का चुनाव करना आसान हो जाता है।

ऊपर हमने अभिवादन के सन्दर्भ में अंग्रेजी के Good morning की बात की। इसको अगर हिन्दी प्रदेश के किसी किसान के सन्दर्भ में अनुवाद करना हो तो 'सुप्रभात' या 'नमस्कार', 'प्रणाम' आदि के बजाय 'राम-राम' करें तो ज्यादा अनुकूल होगा। इसी उदाहरण को आगे बढ़ाते हुए अगर सांस्कृतिक सन्दर्भों की थोड़ी सूक्ष्म व्याख्या करें तो अन्य शब्द भी सामने आएँगे। जैसे अगर किसी पुजारी या पण्डित को अभिवादन करना हो तो हिन्दी प्रदेश में आम तौर पर 'प्रणाम पण्डिजी' या 'पाँय लागूँ पण्डिजी' बोलते हैं। अगर ऐसे प्रसंग में 'सुप्रभात पण्डिजी' या 'नमस्कार पण्डीजी' अनुवाद करें तो अटपटा लगेगा। ऐसे ही अलग-अलग प्रान्तों, भाषा-प्रदेशों में सांस्कृतिक सन्दर्भ बदलते रहते हैं। एक कुशल अनुवादक उन सन्दर्भों का व्यतिरेकी विश्लेषण करके ही शब्दों, ध्वनियों, वाक्यों का चुनाव करता है।

तात्पर्य यह कि पाठ को समझने और उसे सही तरीके से लक्ष्य भाषा में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में भाषा प्रयुक्तियों के लिए व्यतिरेकी विश्लेषण अहम भूमिका निभाता है।

10.2.2 स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के स्तर

व्यतिरेकी विश्लेषण में अनुवाद से पहले पाठ यानी स्रोत भाषा के संरचनात्मक तत्त्व और उसके भेदों की लक्ष्य भाषा के साथ तुलना करते हुए उसका रूपपरक और अर्थपरक अध्ययन किया जाता है। फिर लक्ष्य भाषा में उसके पर्याय ढूँढ़े जाते हैं। ये पर्याय शब्द के स्तर पर भी हो सकते हैं और वाक्य के स्तर पर भी। यानी पाठ में प्रयुक्त वाक्य को लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुरूप रखते समय कई बार शाब्दिक अनुवाद से काम चल जाता है, मगर उसके भेदों को स्पष्ट करने के लिए क्रियापद आदि में फेर-बदल करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के He और She का अर्थ हिन्दी में व्यक्तिवाचक सर्वनाम 'वह' होता है। लेकिन जब वाक्य में प्रयोग करते हैं तो क्रिया पद के माध्यम से अन्तर स्पष्ट करना पड़ता है। 'वह जा रहा है', 'वह जा रही है'। इसी प्रकार बंग्ला, ओड़िया और दूसरी कई भारतीय भाषाओं में भी क्रियापद के माध्यम से सर्वनाम का लिंगभेद स्पष्ट करना पड़ता है।

ऐसे ही वाक्य की भंगिमा से उसका अर्थ निकाल कर लक्ष्य भाषा में उसका अनुवाद प्रस्तुत करना पड़ता है। शाब्दिक अर्थ समझना भर पर्याप्त नहीं होता। जैसे अंग्रेजी में क्रियापद को वाक्य के पहले प्रयोग करके उसे प्रश्नवाचक बनाया जा सकता है। इसके लिए what, why, when आदि का प्रयोग करने की जरूरत नहीं पड़ती। मगर हिन्दी में अनुवाद करते समय ऐसा नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, Are you going? का अनुवाद 'क्या तुम जा रहे हो?' या 'तुम जा रहे हो क्या?' कर सकते हैं। इसी तरह कई बार पाठ में आए कुछ शब्दों को छोड़ा या अनुवाद में नए शब्दों को जोड़ा जा सकता है। उदाहरण के लिए, Please come in का अनुवाद 'अन्दर आइए' या सिर्फ 'आएँ' कर सकते हैं। इसमें अलग से 'कृपया' न भी लिखें तो उसका भाव निहित है।

इस प्रकार व्यतिरेकी विश्लेषण के जरिए दो भाषाओं में शाब्दिक अर्थों और भावों की समानता-असमानता का पता चलता है। भावों में अन्तर स्पष्ट न होने की स्थिति में अनुवादक अक्सर शाब्दिक अनुवाद कर बैठता है। इससे अनेक गड़बड़ियाँ पैदा होती हैं। व्यतिरेकी विश्लेषण के जरिए शब्दविधान, वाक्यविधान और रूपविधान के अध्ययन से अनुवाद को प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाया जा सकता है।

10.2.3 स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की संरचना में अन्तर और अंशव्याप्ति

स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की संरचना का व्यतिरेकी विश्लेषण करने पर पता चलता है कि जहाँ शब्दों के स्तर पर समानता दिखाई दे रही है वहाँ भी रूपपरक अन्तर हो सकता है। इसके अलावा समान स्तर के प्रभेदों में भी अर्थपरक अन्तर हो सकता है। गौरतलब है कि कई बार लक्ष्य भाषा के एक ही शब्द का स्रोत भाषा में दो या अधिक स्तरों पर अलग-अलग रूपों में प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए Old शब्द को लें। हिन्दी में इसका प्रयोग 'बूढ़ा' भी होता है और 'पुराना' भी। इसी प्रकार अंग्रेजी के You का प्रयोग हिन्दी में 'तुम', 'तू' और 'आप' के रूप में होता है। ऐसे ही अंग्रेजी के सम्बन्धसूचक शब्दों का हिन्दी में अनेक रूपों में प्रयोग मिलता है। जैसा कि हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं, Uncle शब्द चाचा, मामा, ताऊ आदि के लिए होता है।

इसी प्रकार अंग्रेजी में कई ऐसे समानार्थी शब्द मिलेंगे जिनके लिए हिन्दी में एक ही शब्द से काम चलाया जाता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी में Ice और Snow दो शब्द हैं, जिनके लिए हिन्दी में एक ही शब्द का प्रयोग होता है 'बर्फ'। इसी प्रकार He, She, It के लिए 'वह'; Thick, Fat के लिए 'मोटा' आदि। Can और May का अर्थ 'सकना' के रूप में लिया जाता है। मगर दोनों का प्रयोग भिन्न रूपों में होता है। पहले का सामान्य रूप में 'सकना' अर्थ लिया जाता है तो दूसरे का आज्ञा के अर्थ में।

इस प्रकार व्यतिरेकी विश्लेषण के जरिए अनुवादक को अन्दाजा लगाना पड़ता है कि स्रोत भाषा के किस शब्द के लिए लक्ष्य भाषा में किस शब्द का प्रयोग या किस प्रकार वाक्य की बनावट में क्रियापद को बदल कर सही अर्थ प्रस्तुत किया जा सकता है।

10.2.4 समानार्थी और समानार्थी लगने वाले कथन

व्यतिरेकी विश्लेषण के जरिए स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में अन्तर स्पष्ट होने के बावजूद कई बार ऐसी समस्या खड़ी हो जाती है, जिसमें लगता है कि लक्ष्य भाषा में कथन के कई रूप मौजूद हैं। ऐसे में चुनाव करना कठिन हो जाता है कि किस रूप को अन्तिम मानें।

उदाहरण के लिए स्रोत भाषा में एक कथन है–She knows driving. इसे लक्ष्य भाषा में दो तरह से कहा जा सकता है–'वह गाड़ी चलाना जानती है' या 'उसे गाड़ी चलाने आता है।' इनमें पहले कथन से यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि उसे सिर्फ गाड़ी चलाने के तरीके के बारे में पता है, जबकि दूसरे कथन से जाहिर है कि वह गाड़ी चलाने में पूरी तरह सक्षम है। लेकिन इस कथन में यह समस्या है कि इससे कर्ता के लिंग का बोध नहीं हो पाता। जिसके बारे कहा जा रहा है, वह स्त्री है या पुरुष, स्पष्ट नहीं है। हालाँकि सन्दर्भ के अनुसार यह लिंग भेद स्पष्ट हो सकता है। इसलिए मामूली अन्तर के बावजूद दोनों अनुवाद उचित कहे जा सकते हैं।

अगर इसी कथन को थोड़ा बदल कर यों कर दें कि I like driving. तो इसका अनुवाद तीन रूपों में किया जा सकता है–मैं गाड़ी चलाना पसन्द करता हूँ', 'मैं गाड़ी चलाना पसन्द करती हूँ' और 'मुझे गाड़ी चलाना पसन्द है।' चूँकि इसमें 'कर्ता' का लिंग स्पष्ट नहीं है, शुरू के दोनों कथन भ्रम पैदा कर सकते हैं या उनके गलत होने का खतरा

हो सकता है। अनुवाद करते समय सन्दर्भ के मुताबिक लिंग का निर्धारण करना पड़ेगा। लेकिन अगर 'मुझे गाड़ी चलाना पसन्द है' कहते हैं तो लिंग भेद के चलते पैदा होने वाले विवाद की गुंजाइश समाप्त हो जाती है। इसलिए तीसरे रूप को अधिक निरापद कहा जा सकता है।

10.3 विभिन्न सन्दर्भों के अनुसार भाषा के बदलते स्वरूप

10.3.1 भाषाओं की विविधता

हम जानते हैं कि हर भाषा की अपनी सीमा होती है। एक भाषा की प्रकृति दूसरे से भिन्न होती है। यह भिन्नता व्याकरण के स्तर पर भी होती है और सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर भी। इसलिए अनुवाद करते समय एक भाषा के कथ्य को दूसरे में हू-ब-हू उतार पाना काफी मुश्किल काम होता है। लेकिन अनुवादक की कोशिश होती है कि वह स्रोत भाषा के कथ्य को लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुरूप सही-सही उतारे। यानी अनुवाद एक प्रकार से मूल पाठ का सह-पाठ बनता है। ऊपर अंग्रेजी और हिन्दी के वाक्य गठन की प्रकृति और शब्दों के अर्थ चुनाव के बारे में सावधानी बरतने की प्रक्रिया पर बात करते हुए हम समझ चुके हैं कि कैसे व्याकरणिक रूप से शुद्ध होते हुए भी शब्दों के अर्थ का चुनाव करने में मामूली असावधानी भी कथन को सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश के हिसाब से अर्थबोध को गड़बड़ कर सकती है।

ऊपर व्यतिरेकी विश्लेषण के बारे में पढ़ते हुए हम जान चुके हैं कि भाषिक विविधता के कारण किस प्रकार अनुवादक को प्रसंग के अनुरूप कुछ बातें छोड़नी और कुछ बातें जोड़नी पड़ती है। आगे हम भाषिक विविधता की वजह से अनुवाद की प्रक्रिया में इन पक्षों पर विस्तार से विचार करेंगे।

10.3.2 जोड़ना और छोड़ना

अनुवाद हमारे यहाँ काफी समय से होता रहा है। यह अलग बात है कि उसकी प्रकृति आज के अनुवाद से कुछ भिन्न होती थी। अनुवाद के इतिहास पर नजर डालें तो मध्यकाल में खूब अनुवाद हुए। मगर उसका स्वरूप बिल्कुल मूल पाठ को केन्द्र में रख कर नहीं होता था। कहीं-कहीं वह मूलनिष्ठ होता था तो कहीं कहीं स्वतन्त्र और कहीं-कहीं छाया मात्र। अनुवादक मूल पाठ को एक स्वतन्त्र रचना का रूप दे देता था। बात वही, मगर कहने का ढंग बिल्कुल अलग। तुलसी, सूर, बिहारी, केशव आदि के साहित्य को देखें तो संस्कृत के अनेक श्लोकों, सन्दर्भों को उन्होंने अपनी कविताओं में बहुत खूबसूरती से ढाला है। वे उनकी अपनी मूल रचना बन गई हैं। तुलसीदास का *रामचरितमानस* देखें तो उसमें अनेक चौपाइयाँ संस्कृत के श्लोकों का हू-ब-हू अनुवाद हैं। हालाँकि अब अनुवाद की परिभाषा के मुताबिक उन रचनाओं को अनुवाद की कोटि में नहीं रखा जा सकता।

अंग्रेजों ने भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार किया तो बाइबिल का व्यापक स्तर पर अनुवाद शुरू हुआ। यह अनुवाद मूलनिष्ठ होता था, यानी मूल पाठ के हर शब्द, हर वाक्य का हू-ब-हू अनुवाद करने की शैली विकसित हुई। उनके अनुवाद की इस पद्धति का कुछ असर हमारे यहाँ के अनुवाद पर भी पड़ा। पर जरा बाइबिल के अनुवादों के साथ मध्यकालीन अनुवादों की तुलना कर देखें। कौन-सा अनुवाद अधिक ग्राह्य, सरस और सहज लगता है।

व्यावसायिक-वाणिज्यिक साहित्य का अनुवाद करते समय जोड़ने या छोड़ने की छूट बहुत नहीं ली जा सकती। उनमें सूचनाएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं। इसलिए उनका अनुवाद करते समय यह सावधानी जरूरी होती है कि कोई भी सूचना या उससे सम्बन्धित तकनीकी शब्दों को छोड़ना या उनकी जगह अपनी तरफ से कुछ जोड़ना सम्भव नहीं होता। उदाहरण के लिए बैंक के लेखा-जोखा या उसके साल भर के कामकाज की रिपोर्ट का अनुवाद करना हो तो केवल भावात्मक अनुवाद से काम नहीं चलता, उसके तकनीकी शब्दों पर विशेष रूप से ध्यान देना पड़ता है। इसी तरह व्यावसायिक कामकाज से जुड़े कागजात का अनुवाद करते समय सावधानी बरतनी पड़ती है।

मगर साहित्यिक अनुवाद में शब्दशः अनुवाद अक्सर गड़बड़ियाँ पैदा कर देते हैं। साहित्यिक अनुवाद करते समय चूँकि अनुवादक को उसे भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों का ध्यान रखना पड़ता है, उसमें जोड़ने और छोड़ने की जरूरत ज्यादा पड़ती है। साहित्य का अनुवाद व्यावसायिक-वाणिज्यिक साहित्य के अनुवाद की तरह केवल एक भाषा में कही बातों को दूसरी भाषा में कह देने भर की प्रक्रिया नहीं होती। वह एक सर्जनात्मक कार्य है। इसलिए उसमें

भावात्मक के साथ-साथ कलात्मक पक्ष भी महत्त्वपूर्ण होता है। अगर किसी कविता का अनुवाद करते समय केवल उसके भावों को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत कर दिया जाए तो पाठक को उसके लालित्य का आनन्द नहीं आ पाएगा। इसलिए उसके लय, तुक, तान आदि का भी ध्यान रखना पड़ता है। इसी प्रकार गद्य का अनुवाद करते समय उसमें प्रयुक्त मुहावरों, लोकोक्तियों, कथन भंगिमा आदि का ध्यान रखना पड़ता है। निम्नलिखित उदाहरणों से अनुमान किया जा सकता है कि साहित्यिक अनुवाद में जोड़ने और छोड़ने का क्या महत्त्व होता है।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि डी.एच. लॉरेन्स की एक कविता का हिन्दी के प्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा किया अनुवाद देखें :

मूल कविता

The breath of Life

The breath of life is in the sharp winds of change,

Mingled with the breath of destruction.

But if you want to breathe deep, sumptuous life.

Breath all alone, in silence, in the dark.

And see nothing.

हिन्दी अनुवाद

जिन्दगी की साँस

जिन्दगी की साँस परिवर्तन की तेज हवा है,

जिसके साथ विध्वंस का उच्छ्वास मिला होता है।

हरियाली से भरी कोई नर्म टहनी जिस पर पावक का फूल खिला होता है।

लेकिन अगर तुम पूरी जिन्दगी को गहरी साँस के साथ खींचना चाहो,

तो एकान्त में जाओ।

शान्ति के बीच समाधि लगाओ।

चीजों को देखने का काम बन्द करो।

अन्धेरे में बसो और आनन्द करो।

अब हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेन्द्र के उपन्यास *'त्यागपत्र'* के सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय द्वारा किए अंग्रेजी अनुवाद का एक अंश :

हिन्दी अंश :

यहाँ खरा कंचन ही टिक सकता है, क्योंकि उसे जरूरत ही नहीं कि वह कहे कि मैं पीतल नहीं हूँ। यहाँ कंचन की माँग नहीं है, पीतल से घबराहट नहीं है। इससे भीतर पीतल रह कर ऊपर कंचन दिखने वाला लोभ यहाँ क्षण भर नहीं टिकता है। बल्कि यहाँ पीतल का मूल्य है। इसलिए सोने के धैर्य की यहाँ परीक्षा है। सच्चे कंचन की परख नहीं होगी। यह यहाँ की कसौटी है। मैं मानती हूँ कि जो इस कसौटी पर खरा हो सकता है वही खरा है और वही प्रभु का प्यारा हो सकता है।

अब इसका अज्ञेय द्वारा किया अंग्रेजी अनुवाद देखें :

Only the real and the living can survive here-conventional morality enters beneath the burning contempt of people. Civilisation-culture-decency :

these polite myths lose all meaning. The best rules untamed and unashamed and calls to the beast that is in every man. It does not matter how deeply hidden the latter may be. You have buried him beneath mounds of inhibition and convention. The rampant and alert he will come forth: Only if you are human through and through can you hope to survive the ordeal and such as come through are the chosen of the Lord.

दोनों अनुवादों की तुलना करने पर सहज ही अनुमान होगा कि कुछ शब्दों को छोड़ और जोड़ कर अनुवादकों ने मूल पाठ की संवेदना को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है। साहित्य के अनुवादक से यही अपेक्षाएँ रहती हैं।

10.3.3 सम्प्रेषणीयता : भाव, वाक्य विन्यास, अर्थतत्त्व आदि

भाषा में प्रयुक्ति की प्रक्रिया मुख्य रूप से सम्प्रेषण की प्रकृति पर निर्भर करती है। जब कोई व्यक्ति सामान्य बातचीत करता है और फिर व्यावसायिक-कामकाजी व्यवहार में भाषा का उपयोग करता है तो दोनों में उसकी भाषा का स्वरूप भिन्न होता है। ऐसा नहीं कि वह सामान्य बातचीत के लिए जिस भाषा का इस्तेमाल करता है, कामकाज में दूसरी भाषा का व्यवहार करता है। हालाँकि कई बार सामान्य तौर पर लोग सामान्य व्यवहार में अपनी मातृभाषा या स्थानीय भाषा का उपयोग करते हैं और कामकाज में अंग्रेजी या किसी दूसरी भाषा का। लेकिन जो लोग दोनों स्तरों पर एक ही भाषा का इस्तेमाल करते हैं उनमें भी काफी अन्तर होता है। आप खुद दोस्तों और परिवार के लोगों से बातचीत करते हुए जिस तरह की भाषा का इस्तेमाल करते हैं वैसा ही कक्षा में अध्यापकों के साथ या किसी दफ्तर में किसी कर्मचारी या अधिकारी से बात करते समय इस्तेमाल नहीं करते। इसी तरह एक डॉक्टर घर के लोगों से बातचीत करते हुए जिस तरह की भाषा और शब्दों का इस्तेमाल करता है वैसा ही अस्पताल में मरीजों या अपने सहकर्मियों-सहयोगियों के साथ किसी समस्या पर विचार-विमर्श करते हुए नहीं करता। ऐसे ही विज्ञान, साहित्य, वाणिज्य, पत्रकारिता, फिल्म आदि के क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों के साथ होता है।

बातचीत के अलावा जब लिखित रूप में किसी बात को कहना या सम्प्रेषित करना होता है तो भाषा का स्तर मौखिक स्तर से बिल्कुल भिन्न होता है। चूँकि सम्प्रेषण का लिखित रूप एक दस्तावेज बन जाता है, इसलिए लिखने वाला उसमें शब्दों के चयन और वाक्यों की बनावट आदि को लेकर अधिक सतर्क रहता है। भाषा का लिखित रूप मानक होता है इसलिए उसमें प्रयुक्त होने वाले शब्दों, वाक्यों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। यह सावधानी बरती जाती है कि जो कहा जा रहा है उसका अर्थ सामान्य व्यक्ति को भी आसानी से समझ में आए।

यही वजह है कि सम्प्रेषण के लिखित रूप में विषयों के अनुसार भाषा प्रयुक्ति में भिन्नता अधिक मिलती है। यदि लिखने वाला किसी सरकारी दफ्तर में अपने किसी काम के लिए अर्जी देता है तो उसकी भाषा अनुरोधपूर्ण, विनय की भाषा होती है, लेकिन वही जब अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को आदेश देते हुए कुछ लिखता है तो उसकी भाषा में आदेशात्मक कठोरता भी दिखाई दे सकती है। मान लीजिए कोई व्यक्ति वाणिज्य-व्यवसाय के काम में लगा है, लेकिन कहानी भी लिखता है। ऐसे में जब वह अपने कामकाज से सम्बन्धित कुछ लिखता है तो उसकी भाषा तकनीकी शब्दावली से भरपूर होती है, लेकिन जब वही कहानी लिखता है तो उसकी भाषा बिल्कुल भिन्न होती है। वह भाषा साहित्यिक होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही व्यक्ति की भाषा अलग-अलग व्यवहार के अनुसार बदल जाती है। हर व्यक्ति की भाषा सामाजिक विशिष्टताओं और विषय क्षेत्र के अनुरूप अपना आकार लेती है।

ऐसे में अनुवाद करने वालों को भी भाषा की सामाजिक विशिष्टता और विषय क्षेत्र के अनुरूप शब्दों के अर्थ और संरचना को समझते हुए प्रयोग करने की जरूरत पड़ती है।

10.3.4 संरचना

जैसा कि हम बात कर चुके हैं, भाषा की संरचना सामाजिक विशिष्टताओं और विषय क्षेत्र के अनुरूप अपना आकार ग्रहण करती है। अगर कोई व्यक्ति साहित्यिक लेखन कर रहा है या किसी साहित्यिक विषय-वस्तु पर बोल या विचार-विमर्श कर रहा है तो उसकी भाषा में अलंकारों, उपमाओं, मुहावरों, लोकोक्तियों, कविताओं या पूर्ववर्ती

लेखकों-रचनाकारों की कही-लिखी बातों के उद्धरण आदि भरपूर मात्रा में इस्तेमाल हो सकते हैं। लेकिन खेल पर लिखते हुए, वाणिज्यिक-व्यावसायिक विषयों पर लिखते हुए अलंकारों, उपमाओं, लोकोक्तियों-मुहावरों के इस्तेमाल की गुंजाइश बहुत कम रहती है। उसमें भी अगर समाचार लिखना हो तो उसकी भाषा की संरचना बिल्कुल भिन्न होती है। सूचनापरक। समाचारों में भी विषय के अनुरूप भाषा की संरचना बदल जाती है। अगर बाजार भाव या शेयर बाजार का समाचार लिखना है तो उसकी संरचना कुछ और होगी। वही जब किसी अदालती फैसले से सम्बन्धित समाचार लिखना हो तो भाषा की संरचना अलग होगी। अदालती फैसलों में अरबी-फारसी के तकनीकी शब्दों का भरपूर इस्तेमाल होता है।

तात्पर्य यह कि विषय-क्षेत्र के अनुसार भाषा की संरचना बदलती रहती है। ऐसा इसलिए होता है कि हर विषय क्षेत्र में इस्तेमाल होने वाले तकनीकी शब्दों की प्रकृति भिन्न होती है। हम आगे चर्चा करेंगे कि किस प्रकार एक ही शब्द दूसरे विषय क्षेत्र में जाकर अपना स्वरूप बदल लेता है। तकनीकी शब्दावली अपने पर्याय की इजाजत नहीं देते। इसलिए जिन क्षेत्रों में तकनीकी शब्दावली का कम से कम प्रयोग होता है, उनमें भाषा की संरचना लालित्यपूर्ण होती है। अनुवादक को हर विषय क्षेत्र की प्रकृति को समझते हुए ही दी गई सामग्री का अनुवाद करना पड़ता है।

10.4 भाषा प्रयुक्ति के निर्धारक तत्त्व

अब सवाल उठना स्वाभाविक है कि वे कौन से तत्त्व हैं जिनके आधार पर एक भाषा प्रयुक्ति की पहचान दूसरी भाषा प्रयुक्ति से अलग होती है। विभिन्न क्षेत्रों की भाषा प्रयुक्तियों पर नजर दौड़ाकर इसे स्पष्टतः जाना जा सकता है। साहित्य में प्रयोग आने वाले शब्दों, अदालत के फैसलों, बाजार में इस्तेमाल होने वाले शब्दों, बैंक में प्रयोग होने वाले शब्दों को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि भाषा प्रयुक्तियों की पहचान में शब्दों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। इसी तरह विभिन्न भाषा-क्षेत्रों में वाक्यों की बनावट और उनकी शैली भाषा प्रयुक्ति की पहचान में सहायक होते हैं।

चूँकि प्रयुक्तियाँ भाषा के भीतर ही विकसित होती हैं, समय-समय पर उनमें बदलाव या कहें कि बढ़ोतरी होती रहती है, उनका स्वरूप कुछ बदल जाया करता है, उन्हें निर्मित करने वाले घटक उस भाषा के संरचनात्मक घटक ही होते हैं। इन प्रयुक्तियों में बदलाव या चयन-संयोजन विशिष्ट स्थितियों और जरूरतों के अनुरूप होता रहता है। इस प्रकार शब्द प्रयोग, वाक्य विन्यास, शैली आदि भाषा प्रयुक्ति की निजी पहचान बनती है।

10.4.1 शब्दावली

किसी भी भाषा प्रयुक्ति का प्रमुख आधार उसकी शब्दावली होती है। एक प्रयुक्ति को दूसरी प्रयुक्ति से विलगाने के लिए उसमें प्रयुक्त शब्दावली पर ध्यान देने की जरूरत होती है। कानून की भाषा में इस्तेमाल शब्दों और वाणिज्य की भाषा में इस्तेमाल शब्दों में काफी अन्तर होता है। वैसे ही बैंक की शब्दावली और विज्ञान की शब्दावली में अन्तर होता है। विज्ञान के क्षेत्र में भी आप भौतिकी, रसायन और चिकित्सा विज्ञान की शब्दावलियों में प्रयाप्त अन्तर देखते हैं। इसी प्रकार जब आप व्यावसायिक क्षेत्र से अलग परिवार और समाज के स्तर पर व्यवहृत शब्दों को देखते हैं तो काफी अन्तर होता है। यहाँ तक कि एक ही व्यक्ति जो दूर-दराज के गाँवों से आकर शहर में बसा है, उसकी शहर में परिवार के भीतर और परिवार के बाहर के लोगों से बातचीत में इस्तेमाल होने वाले शब्द भिन्न होते हैं। उसके बहुत सारे शब्द गाँव और शहर की भाषा के मेल से बने होते हैं तो उसके वाक्य की बनावट और बोलने की शैली भी इस मिश्रण से बच नहीं पाती।

हम जानते हैं कि शब्दों के निर्माण में विशिष्ट भाषा क्षेत्र की संकल्पनाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जैसे गणित में 'त्रिज्या', 'व्यास', 'चाप', 'प्रमेय' आदि शब्द हैं तो वाणिज्य में 'रोकड़', 'बिचौलिया', 'हुण्डी', 'रुक्का'। हर भाषा क्षेत्र अपनी जरूरतों के मुताबिक, अलग-अलग संकल्पनाओं के अनुसार शब्द गढ़ता है। उसके हर शब्द से एक विशिष्ट पहचान जुड़ी होती है। जैसे ही हम ऐसे किसी शब्द का इस्तेमाल करते हैं, उस भाषा क्षेत्र की संकल्पना हमारे दिमाग में उभरती है। यही वजह है कि आप एक ही शब्द के अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग शब्द रूप प्रयुक्त होते देखते हैं। उदाहरण के लिए खेलों में शून्य (Zero) को ही लें। इसके लिए टेनिस और वालीबॉल में

लव (Love) शब्द का प्रयोग होता है तो क्रिकेट में डक (Duck) और चौसर में निल (Nil) शब्द का। इस प्रकार इनमें से जिस भी शब्द का प्रयोग करते हैं उससे उस खेल का बोध होता है।

10.4.2 वाक्य विन्यास

शब्दावली के अलावा विषय के अनुरूप वाक्य की संरचना भी भाषा प्रयुक्ति की पहचान में सहायक होती है। साहित्य, वाणिज्य, प्रशासन, विज्ञान, गणित आदि क्षेत्रों में वाक्यों की बनावट भिन्न होती है। विज्ञान और गणित में बहुत सारी बातें तय प्रतीक चिह्नों के माध्यम से कही जाती हैं। वैसे ही प्रशासनिक कामकाज में फाइलों पर नोट लिखते समय कुछ तय शब्दावली का प्रयोग होता है–जैसे–*देखें, मिल कर बात करें, अग्रसारित किया गया*...आदि। साहित्य में प्रयोग होने वाले वाक्यों की बनावट से हम सब परिचित हैं। इसमें अलंकारिक, बिम्ब प्रधान वाक्यों का प्रयोग होता है। इसी प्रकार पत्रकारिता में खबरों के शीर्षक लगाते समय प्रायः बिना क्रियापदों वाले वाक्य बनाए जाते हैं–जैसे–*विपक्ष ने प्रधानमन्त्री को घेरा, संयुक्त संसदीय समिति पर गतिरोध टूटा*... आदि। इस तरह हर विषय-क्षेत्र में वाक्यों की बनावट कुछ रूढ़ रूपों में देखने को मिलती है।

10.4.3 शैली

भाषा सम्बन्धी प्रयुक्तियों में शैली को सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव माना जाता है। जैसा कि हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं, स्थितियों और विषय के अनुसार व्यक्ति के कथन का तरीका बदल जाया करता है। कथन के तरीके को ही शैली कहते हैं। साहित्य में अभिव्यक्ति के समय जहाँ अलंकारिक भाषा, लोकोक्तियों, मुहावरों आदि के प्रयोग की पर्याप्त गुंजाइश रहती है, वहीं प्रशासन, वाणिज्य, विज्ञान, कानून आदि में ऐसे प्रयोगों की गुंजाइश बहुत कम होती है। जहाँ भी अभिव्यक्ति या कथन में तथ्यों पर अधिक से अधिक बल होता है, वहाँ विषय विशेष से सम्बन्धित तकनीकी शब्दावली से बाहर जाने की गुंजाइश नहीं होती। उदाहरण के लिए गणित, विज्ञान, वाणिज्य-व्यवसाय की भाषा को ले सकते हैं। बैंकिंग, शेयर बाजार, व्यापारिक गतिविधियों से जुड़ी अभिव्यक्तियों में तकनीकी शब्दों का बहुतायत में प्रयोग होता है।

हम ऊपर बात कर चुके हैं कि हर विषय क्षेत्र में कथन का विशिष्ट तरीका होता है। यह उस विषय क्षेत्र की शैली कहलाती है। जैसे अदालत में प्रयोग होने वाली भाषा का स्वरूप खेल की भाषा से बिल्कुल भिन्न होता है। अगर कहते हैं कि 'रामबचन बनाम बेलाराम' तो स्पष्ट हो जाता है कि रामबचन और बेलाराम के बीच किसी मामले को लेकर झगड़ा है, कोई विवाद है, जिसका अदालत में निपटारा होना है। लेकिन अगर कहते हैं कि 'भारत के विरुद्ध आस्ट्रेलिया ने दो विकेट से बढ़त हासिल की' तो स्पष्ट होता है कि भारत और आस्ट्रेलिया की टीमों के बीच हुए खेल में आस्ट्रेलिया ने विजय हासिल की। अगर कहा जाता है कि रामबचन हाजिर हों तो स्पष्ट हो जाता है कि रामबचन को अदालत में न्यायाधीश के सामने उपस्थित होने के लिए पुकार लगाई गई है। मगर उसी जब रामबचन को किसी मंच पर भाषण के लिए बुलाया जाता है तो कहा जाता है कि रामबचन जी मंच पर पधारें और अपने विचारों से हमें अवगत कराएँ। एक में बिल्कुल तकनीकी शब्दावली का प्रयोग है, जिसमें औपचारिकता नहीं है; तो दूसरी में औचारिकतापूर्ण भाषा है। इसी तरह पत्रकारिता में समाचार लिखते समय साहित्यिक रचना से भिन्न भाषा का प्रयोग किया जाता है। जब कोई उद्घोषक रेडियो पर गीत-संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहा होता है तो उसकी भाषा समाचार पढ़ते समय प्रयुक्त होने वाली भाषा से भिन्न होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शैली, भाषा प्रयुक्ति का एक सशक्त माध्यम है। अनुवाद करते समय अनुवादक को दोनों भाषाओं की इन विशिष्टताओं का ध्यान रखना होता है।

10.5 भाषा प्रयुक्ति के आधार

उल्लेखनीय है कि भाषा में प्रयुक्तियाँ जीवन के विशेष सन्दर्भों के अनुसार निर्धारित होती हैं और बदलती रहती हैं। इस तरह हर विषय क्षेत्र की अपनी शब्दावली और उसी के अनुरूप उसकी वाक्य संरचना होती है। भाषा प्रयुक्तियाँ न केवल बातचीत के समय बदलती हैं, बल्कि भाषा सम्बन्धी प्रयुक्तियों में सबसे अधिक भेद लिखित रूप में दिखाई देता है। अब पत्र-लेखन के सम्बन्ध में ही उदाहरण लें, जब हम अपने मित्र को पत्र लिखते हैं और किसी दफ्तर

में किसी काम के लिए अर्जी देते हैं तो दोनों की भाषा अलग होती है, यहाँ तक कि मित्र को लिखे जाने वाले पत्र और पिताजी या माताजी को लिखे जाने वाले पत्र की भाषा प्रयुक्तियों में अन्तर होता है। इसी तरह स्वास्थ्य विभाग से सम्बन्धित किसी काम से जुड़ा दस्तावेज तैयार करते हैं और कृषि विभाग से सम्बन्धित कामकाज के दस्तावेज तैयार करते हैं, तो दोनों की भाषा प्रयुक्तियों में अन्तर होता है। इस प्रकार भाषा प्रयुक्तियों की प्रकृति विभिन्न सन्दर्भों पर निर्भर करती है। उन्हें हम निम्नलिखित भागों में वर्गीकृत कर देख सकते हैं।

10.5.1 औपचारिक-अनौपचारिक स्थिति

औपचारिक बातचीत या लेखन में हम अक्सर शब्दों के चुनाव, वाक्यों की बनावट, शैली आदि को लेकर सावधान रहते हैं। ध्यान रखते हैं कि कोई भी शब्द बेवजह न प्रयोग होने पाए। जो शब्द प्रयोग हों वे उस विषय क्षेत्र से सम्बन्धित हों। जैसे विज्ञान, गणित, कृषि, इतिहास, व्यापार-वाणिज्य वगैरह के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले तकनीकी शब्दों का अपना महत्त्व होता है, इसलिए इनमें से विषय विशेष से सम्बन्धित लेखन करते समय अगर उससे जुड़ी शब्दावली का प्रयोग न हो तो न विषय से सम्बन्धित बात को सही तरीके से लोगों तक पहुँचाया जा सकता है, न उसकी विश्वसनीयता रह जाती है। औपचारिक लेखन या बातचीत, भाषण, विमर्श आदि के समय किसी विषय-क्षेत्र से जुड़ी शब्दावली को दूसरे भाषा-क्षेत्र में प्रयोग करने की छूट नहीं ली जा सकती।

लेकिन अनौपचारिक लेखन या बातचीत में ऐसी सावधानी बरतने की जरूरत नहीं समझी जाती। शब्दों के चयन, वाक्यों की बनावट आदि की परवाह नहीं की जाती। इसलिए इसमें भाषा प्रयुक्तियाँ औपचारिक लेखन या बातचीत से बिल्कुल भिन्न होती हैं। किसी व्यक्ति की सामान्य बातचीत की भाषा, या घर-परिवार में मित्रों, परिवार के लोगों से बातचीत की भाषा, किसी मंच से उसके भाषण देने या रेडियो-टेलीविजन पर किसी खास विषय पर बातचीत करने की भाषा से मेल नहीं खाता। अनौपचारिक सम्प्रेषण में अनेक बार भौंहें सिकोड़ कर, मुँह बिदका कर, कन्धे और कूल्हे मटका कर भी काम चला लिया जाता है, मगर औपचारिक सम्प्रेषण में इसकी गुंजाइश नहीं होती। आपने ध्यान दिया होगा कि जब हम फोन पर बात करते हैं और आमने-सामने बात करते हैं तब भी सम्प्रेषण की भाषा कुछ अलग हो जाती है।

औपचारिक भाषा में भी विभिन्न विषय-क्षेत्रों के अनुरूप प्रयुक्तियाँ बदल जाया करती हैं। उदाहरण के लिए अखबार में समाचार विश्लेषण करते समय और फिर उसी विषय पर कोई शोध-पत्र लिखते समय भाषा प्रयुक्तियों में काफी अन्तर हो जाता है। अखबार में लिखी जाने वाली सामग्री का मकसद अक्सर सूचनाप्रद होता है, जबकि शोध-पत्रों का मकसद विद्वानों को प्रभावित करना। इस तरह दोनों में खण्डन-मण्डन, तथ्यों के पुष्टीकरण आदि का तरीका और उनमें प्रयुक्त होने वाले शब्दों की प्रकृति भिन्न हो जाती है। अब इन बातों को थोड़ा विस्तार से समझते हैं।

10.5.2 विषय क्षेत्र : प्रशासन, साहित्य, वाणिज्य, विज्ञान आदि

सचाई है कि विषय क्षेत्र के अनुरूप भाषा सम्बन्धी प्रयुक्तियों का स्वरूप बदल जाया करता है। जैसे प्रशासनिक कामकाज की भाषा साहित्य की भाषा से अलग होती है। उसी प्रकार वाणिज्यिक कामकाज में इस्तेमाल होने वाले शब्द विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में इस्तेमाल होने वाले, कृषि के क्षेत्र में प्रयोग होने वाले शब्दों से अलग होते हैं। गणित, विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में प्रायः संकेत भाषा का प्रयोग होता है। हर प्रयुक्ति के लिए कुछ संकेताक्षर निर्धारित हैं जैसे, अल्फा, बीटा, गामा (α, β, γ) आदि। इसी तरह रसायन विज्ञान में धातुओं के नाम संकेताक्षरों से दर्शाए जाते हैं। गणित के चिह्न भी कुछ इसी तरह के होते हैं। इनके लिए शब्दों के इस्तेमाल की बहुत जरूरत नहीं होती। सिद्धान्त रूप में किसी बात को कहने के लिए विज्ञान और गणित में जिन शब्दों का इस्तेमाल होता है, उनका रूप भी पहले से तय होता है।

वाणिज्य-व्यवसाय, जैसे बैंक, बीमा, आयात-निर्यात, परिवहन, पर्यटन, खरीद-बिक्री आदि के मामले में तकनीकी शब्द पहले से तय होते हैं। उसी प्रकार कार्यालयी कामकाज में प्रयुक्त होने वाले शब्दों की सूची निर्धारित है। प्रशासन के अलग-अलग स्तरों पर प्रयुक्त होने वाले शब्दों का रूप तय होता है। अधीनस्थ कर्मचारियों के लिए अधिकारियों के आदेश/निर्देश की शब्दावली अलग होती है, उसी प्रकार कर्मचारियों द्वारा प्रस्तुत किसी प्रस्ताव, मंजूरी के

प्रतिवेदन, टिप्पण, पत्र आदि की भाषा अलग होती है। वहीं जनसाधारण के लिए आदेश, पत्र या सूचना वगैरह तैयार करने की भाषा अलग होती है। हर स्तर पर प्रयोग होने वाले शब्दों की अपनी निर्धारित रूपरेखा है।

साहित्य के मामले में ऐसा नहीं है। साहित्य चूँकि अपने समय और समाज की स्थितियों, विसंगतियों, भावनाओं आदि की अभिव्यक्ति होता है, इसमें लालित्य, अलंकारिकता, बिम्बों-प्रतीकों के प्रयोग की खूब गुंजाइश होती है। भाषा की चारुता और शब्दों-वाक्यों की बनावट में नए प्रयोग लेखक की प्रतिभा और शैली के नवोन्मेष की कसौटी माना जाता है, इसलिए हर लेखक भाषा में नए प्रयोगों की कोशिश करता देखा जाता है। कविता, कहानी, आलोचना, नाटक, संस्मरण आदि स्तरों पर देखें तो साहित्य की भाषा में भी विधागत अनुशासन होता है। कविता की भाषा अलग होती है, आलोचना की अलग। आलोचना की भाषा नाटक और कथा साहित्य में इस्तेमाल नहीं की जा सकती।

10.5.3 सम्प्रेषण का तरीका : मौखिक, लिखित

भाषा प्रयुक्तियों में यह बात भी बड़ी महत्त्वपूर्ण होती है कि उसका प्रयोग मौखिक रूप में हो रहा है या लिखित रूप में। मौखिक रूप से इस्तेमाल होने वाली भाषा अनौपचारिक भाषा प्रयोग के अन्तर्गत आती है जबकि लिखित रूप औपचारिक भाषा के अन्तर्गत। औपचारिक भाषा के अन्तर्गत शब्दों के चयन, वाक्यों की बनावट और विषय के अनुरूप प्रयुक्तियों के इस्तेमाल पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जबकि अनौपचारिक यानी मौखिक भाषा में प्रायः इसकी परवाह नहीं की जाती। इस बारे में हम पहले बात कर चुके हैं और आगे चल कर विस्तार से चर्चा करेंगे।

10.5.4 वक्ता-श्रोता या लेखक-पाठक की स्थिति

वक्ता और श्रोता, पाठक और लेखक का पारस्परिक सम्बन्ध क्रमशः सामाजिक, व्यावसायिक और पद क्रम पर बहुत कुछ निर्भर करता है। जब कोई लेखक कोई लेख, पत्र, परिपत्र, अनुबन्ध आदि तैयार करता है तो उसके सामने उसका पाठक समुदाय होता है। वह तय करता है कि जिसके लिए वह लिख रहा है उसे किस तरह की भाषा आसानी से समझ में आ सकती है, प्रभावित कर सकती है। उदाहरण के लिए अगर किसी समाचार पत्र का पाठक समुदाय ग्रामीण इलाकों में रहता है, वह बहुत पढ़ा-लिखा नहीं है तो उसमें समाचार, लेख, सम्पादकीय आदि लिखते समय अधिक से अधिक बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया जाता है। शीर्षक वगैरह में स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया जाता है। मगर जब विश्वविद्यालयों में शोध-पत्र, संगोष्ठी-पत्र वगैरह लिखा जाता है तो प्रायः परिनिष्ठत भाषा का प्रयोग किया जाता है। खण्डन-मण्डन की शैली का प्रयोग होता है।

वही लेखक अपने मित्र या परिवार के लोगों को पत्र लिखते समय तकनीकी शब्दावली, या परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग नहीं करता। मित्र को पत्र लिखते समय भाषा में जैसी बेपरवाही होती है, पिता को पत्र लिखते समय वही भाषा-शैली नहीं होती। किसी कार्यालय में किसी काम के लिए पत्र लिखते हुए भाषा न केवल औपचारिक होती, बल्कि उसमें तकनीकी शब्दावली का भी भरपूर प्रयोग होता है।

माना जाता है कि बातचीत में अक्सर अनौपचारिक भाषा का इस्तेमाल होता है। पर यह भी वक्ता और श्रोता समुदाय के सम्बन्ध-फलक, विषय-फलक, परिस्थिति की संवेदनशीलता पर निर्भर करता है। विश्वविद्यालय का अध्यापक अपने विद्यार्थियों से बात कर रहा है, डॉक्टर अपने मरीज से, अधिकारी अपने मातहत कर्मचारी से... हर बातचीत की भाषा लिखित भाषा की तरह भले औपचारिक न हो, पर उसमें एक सजगता होती है, एक प्रकार का अनुशासन होता है। उस भाषा को पूरी तरह अनौपचारिक नहीं कहा जा सकता। जबकि घर-परिवार के लोगों, मित्रों से बातचीत में वैसी सजगता नहीं बरती जाती।

इस प्रकार एक अनुवादक के लिए यह समझना जरूरी होता है कि जिस सामग्री का वह अनुवाद कर रहा है उसकी भाषा प्रयुक्ति के आधार क्या हैं।

10.6 विभिन्न भाषा प्रयुक्तियाँ

भाषा सम्बन्धी प्रयुक्तियों की प्रकृति और उनकी अनिवार्यता के बारे में विस्तार से चर्चा करने के बाद अब यह समझना आसान है कि प्रयुक्तियाँ किस आधार पर निर्मित होती हैं। प्रयुक्तियों के स्वरूप को विभिन्न विषय क्षेत्रों

के आधार पर जानने-समझने की कोशिश में भाषा प्रयुक्ति सम्बन्धी विषय क्षेत्रों को मोटे तौर पर निम्नलिखित कोटियों में विभक्त किया जा सकता है :

1. प्रशासन
2. साहित्य
3. समाज विज्ञान
4. विज्ञान और तकनीक
5. मीडिया
6. विज्ञापन आदि

10.6.1 प्रशासन

समाज में तकनीकी शब्दावली का सबसे अधिक प्रयोग प्रशासनिक कामकाज में होता है। प्रशासन के चूँकि अनेक स्तर हैं, उनमें अलग-अलग स्तरों पर अलग-अलग प्रयुक्तियों का चलन है। प्रशासनिक कामकाज दो स्तरों पर होता है। एक कार्यालय के भीतर और दूसरा लोक-प्रशासन के स्तर पर। कार्यालयी गतिविधियों में अधिकारियों और कर्मचारियों के बीच विभिन्न फाइलों के आवागमन में, योजनाओं की मंजूरी हेतु लिखे प्रतिवेदनों में अलग तरह की भाषा प्रयुक्तियाँ इस्तेमाल होती हैं, जबकि लोक प्रशासन के सन्दर्भ में सूचनाएँ, आदेश, अध्यादेश आदि की शब्दावली भिन्न होती है।

कार्यालयी कामकाज में टिप्पण लेखन, प्रारूप तैयार करना, पत्र लेखन, सार लेखन, प्रतिवेदन आदि शामिल हैं। इनमें प्रयोग होने वाली भाषा सरल, सुसंगत और सबकी समझ में आने वाली होती है। इनमें साहित्यिक भाषा की तरह अलंकारिक शब्दों का प्रयोग और प्रतीकों, बिम्बों के जरिए बात कहने की गुंजाइश नहीं होती। इनमें स्थानीय, ठेठ और अप्रचलित शब्दों के प्रयोग भी नहीं किए जाते। कार्यालयी भाषा में तकनीकी शब्दों की प्रधानता होती है। इसमें प्रयुक्त होने वाले शब्दों को तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा सूचीबद्ध किया जा चुका है। इससे सम्बन्धित एक अलग कोश है। ऐसा इसलिए भी किया गया है कि सभी कार्यालयों में प्रयुक्तियों के मामले में एकरूपता बनी रहे। शब्दों के इस्तेमाल की तरह कार्यालयी हिन्दी में वाक्यों की बनावट भी साहित्यिक भाषा से भिन्न होती है। कुछ उदाहरणों से इसे समझा जा सकता है :

- समक्ष अधिकारी का अनुमोदन प्राप्त करें।
- सावधिक रिपोर्ट संयुक्त सचिव को प्रस्तुत करें।
- समक्ष अधिकारी का अनुमोदन प्राप्त कर लिया गया है।
- तदर्थ भर्ती के प्रस्ताव पर विचार किया जा रहा है।
- जुर्माने की राशि एकमुश्त अदा करनी होगी।
- व्यक्तिगत ब्योरे संलग्न किए जाएँ।
- आयोग ने सिफारिश की कि इस मामले में कोई तारीख न तय की जाए।

उपर्युक्त वाक्यों की प्रकृति को ध्यान से देखने पर मालूम होता है कि इनमें अंग्रेजी और उर्दू से आए शब्दों का बहुतायत से प्रयोग होता है। इन शब्दों के अलावा प्रशासनिक कामकाज में बहुत सारे शब्द ऐसे भी मिल जाएँगे जो अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी के मेल से बने हैं। जैसे, शेयरधारक, टेण्डरदाता, प्रैक्टिसबन्दी भत्ता आदि।

कार्यालयी कामकाज में वरीयता क्रम के मुताबिक कुछ प्रयुक्तियाँ रूढ़ हो चुकी हैं। जैसे कोई अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारी से 'राय' नहीं, 'स्पष्टीकरण' माँगता है। इसी प्रकार जब कोई कर्मचारी अपने अधिकारी से किसी योजना या काम के लिए मंजूरी माँगता है तो वह प्रस्ताव पर 'आज्ञार्थ' न लिख कर 'आदेशार्थ' लिखता है। रजिस्टर में कोई बात 'लिखी' नहीं जाती बल्कि 'दर्ज' की जाती है।

प्रशासनिक कामकाज का एक हिस्सा होते हुए भी वैधानिक कामकाज में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली भिन्न होती है। कानूनी भाषा में उर्दू-फारसी, अंग्रेजी शब्दों की बहुतायत होती है। चूँकि विधिक भाषा में सतर्कता और स्पष्टता पर अधिक ध्यान दिया जाता है, इसमें ऐसा एक भी शब्द प्रयोग करने की इजाजत नहीं होती जिसके बल पर कथन से कोई भिन्न अर्थ निकाला जा सके। इसमें प्रयुक्त शब्दावली और वाक्यों का ढाँचा रूढ़ होता है। शब्दावली आयोग ने इससे सम्बन्धित शब्दावली का अलग कोश तैयार कर रखा है।

10.6.2 साहित्य

साहित्य का सम्बन्ध भाषा विशेष के समाज और संस्कृति से होता है। साहित्य चूँकि अपने समाज में रहने वाले लोगों के जीवन-व्यवहार को अभिव्यक्त करता है, उनकी समस्याओं, समाज के भीतर की विसंगतियों आदि को उजागर करने की कोशिश करता है, उसमें अनेक बातें बिम्ब-प्रतीकों और अलंकारिक भाषा के जरिए कहने का प्रयास किया जाता है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। यानी वह अपने समाज की गतिविधियों का केवल ब्योरा नहीं देता, उसके भीतर चल रही परिवर्तन सम्बन्धी हलचलों, अन्तर्द्वंद्वों, आन्दोलनों को भी रेखांकित करता है। गहन और संश्लिष्ट मानवीय अनुभवों को उकेरने की कोशिश करता है। इन सबके जरिए वह एक कल्याणकारी समाज की रचना का भी प्रयास करता है। इस तरह वह न सिर्फ मुहावरों-लोकोक्तियों, रूपकों आदि का सहारा लेता है, बल्कि समाज के भीतर बोली जाने वाली भाषा का भी इस्तेमाल करता है। अर्थात, साहित्य समाज के यथार्थ और कल्पना का सुघर समन्वय करता है, जिससे पाठक को लगता है कि साहित्य में वर्णित घटनाएँ और कही गई बातें मानो उनके बीच ही घटित हुई हैं।

आप जब कोई कहानी-उपन्यास या कविता पढ़ते हैं तो महसूस करते हैं कि उसमें कही गई बातें जैसे आपके आसपास, आपके भीतर ही घटित हुई हैं। कई बार लगता है कि लेखक ने जैसे आपके मन की ही बात कह दी है। यही साहित्य की विशेषता है। वह व्यावसायिक-वाणिज्यिक या प्रशासनिक लेखन की तरह मात्र सूचनात्मक नहीं होता। उसमें भावनाओं, कल्पना और विचारों का सुन्दर समन्वय होता है, सुन्दर सन्देश होते हैं। इसलिए साहित्य में तकनीकी भाषा का इस्तेमाल नहीं होता। सीधी-सरल भाषा में बात कहते हुए भी लेखक बिम्बों-प्रतीकों, अलंकारिक कथनों का इस्तेमाल करता है, लाक्षणिक और व्यंजनात्मक भाषा का प्रयोग करता है। स्थानीय बोली के शब्दों, मुहावरों और कहावतों का प्रयोग करता है। कहानियों-उपन्यासों-नाटकों में पात्रों के अनुरूप भाषा और बोली के इस्तेमाल की छूट लेता है। इस तरह वह देशज शब्दों का भी इस्तेमाल कर सकता है और संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का भी। उसमें दूसरी भाषाओं के शब्दों की भी सहज आवाजाही दिखाई दे सकती है।

ऐसे में साहित्य के अनुवादकों से स्वाभाविक तौर पर अपेक्षा की जाती है कि उन्हें न केवल भाषा-ज्ञान हो, बल्कि भाषिक संस्कृति, उसकी परम्पराओं, स्थानीय मान्यताओं आदि की भी जानकारी रहे। व्यावसायिक-वाणिज्यिक या प्रशासनिक दस्तावेजों की तरह उससे कोश के जरिए तकनीकी शब्दावली का ठीक-ठीक प्रयोग कर देने भर की अपेक्षा नहीं होती। कई बार उसे स्थानीय बोलियों से शब्द ग्रहण करने, नए शब्द गढ़ने की भी जरूरत पड़ती है।

10.6.3 समाज विज्ञान

समाज विज्ञान के अन्तर्गत आम तौर पर चार विषयों को समाहित किया जाता है– इतिहास, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र। आपने ध्यान दिया होगा, सामाजिक विज्ञानों की भाषा सामान्य व्यवहार की भाषा के बहुत करीब होती है। हालाँकि इनमें साहित्य की तरह बिम्बों, प्रतीकों, अलंकारों के जरिए और व्यंजना, लक्षणा में बात कहने की गुंजाइश नहीं रहती, मगर इनकी भाषा बहुत कुछ साहित्य के निकट होती है। उसमें भी सामान्य बोलचाल की भाषा होती है। चूँकि ये समाज में चल रही गतिविधियों, हलचलों, प्रवृत्तियों, परम्पराओं, रिवाजों, राजनीतिक-सामाजिक और आर्थिक बदलावों पर विचार-विमर्श होता है, इसलिए समाज विज्ञान की भाषा में निरन्तर बदलाव, बदलती स्थितियों के अनुसार परिवर्तन सहज ही देखा जा सकता है। इसमें समाज, बाजार, व्यापार, वाणिज्य, संसदीय कार्यवाही आदि में व्यवहृत नई शब्दावली तुरन्त अपनी जगह बना लेती है।

चूँकि समाज विज्ञान में वस्तुनिष्ठ तरीके से स्पष्ट और सटीक बातें कही जाती हैं इसलिए इनके भी अपने अनेक पारिभाषिक शब्द हैं। इस तरह व्यावसायिक-वाणिज्यिक और प्रशासनिक भाषा की तरह इसमें भी सटीकता और तथ्यात्मकता होती है। कह सकते हैं कि सामाजिक विज्ञानों की भाषा, साहित्य और प्रशासनिक-वाणिज्यिक भाषा

का मिला-जुला रूप होती है। इसकी भाषा काल विशेष और स्थिति विशेष के अनुसार नए आकार लेती रहती है। प्राचीन काल के शासन-प्रशासन, वाणिज्य-व्यापार, परम्पराओं, रीति-रिवाजों के आर्थिक, राजनीतिक, समाज शास्त्रीय विश्लेषण पर नजर डालें और फिर मुगल काल और उसके बाद के आधुनिक विश्लेषणों पर ध्यान दें तो पाएँगे कि कुछ शब्दावली जरूर अपनी जगह बनी हुई है, पर उसका कोश लगातार बड़ा होता गया है। कई अर्थों में इसका स्वरूप बदल भी गया है। वैश्विक परिदृश्य के मद्देनजर आज की सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों का दायरा ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, इसके शब्द भण्डार, और भाषा-फलक में निरन्तर वृद्धि और बदलाव आते गए।

बदलते समय के अनुसार समाज विज्ञान के सिद्धान्तों, विचारों, संकल्पनाओं और नियमों की व्याख्याओं को लेकर वाद-संवाद भी होते हैं। ऐसे में किसी वाद का नाम किसी विचारक या किसी प्रवृत्ति के नाम पर पड़ जाता है; जैसे– गाँधीवाद, मार्क्सवाद, साम्यवाद, मानवतावाद, सामन्तवाद, सुधारवाद, उदारवाद, पूँजीवाद, राष्ट्रवाद, आधुनिकतावाद, उत्तर-आधुनिकतावाद, सम्प्रदायवाद, आतंकवाद आदि। आधुनिककाल में चूँकि बाजार का विस्तार तेजी से हुआ है और तमाम प्रवृत्तियों, गतिविधियों, कलाओं का नियन्त्रण-मूल्यांकन बाजार करने लगा, लिहाजा बाजार एक निर्णायक भूमिका में नजर आता है। पूरी दुनिया में अर्थव्यवस्था पर जोर है। ऐसे में आर्थिक विमर्शों, बाजार की गतिविधियों में सबसे तीव्र परिवर्तन भाषा में देखा जाता है। इसलिए एक अनुवादक को इन तमाम परिवर्तनों पर नजर रखने की जरूरत होती है। अर्थशास्त्र में आँकड़ों, प्रमाणों, तालिकाओं, रेखाचित्रों में संकेत चिह्नों, प्रतीकों और संक्षिप्तियों का प्रयोग होता है, इसलिए अनुवादक को उनसे भी परिचित होना जरूरी होता है।

10.6.4 विज्ञान और तकनीकी

विज्ञान तथ्यपरकता पर आधारित होता है। इसमें हर शब्द, हर प्रत्यय का अर्थ निश्चित होता है। उसका पर्याय या उसकी लाक्षणिक व्याख्या नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए त्वरण या गुरुत्वाकर्षण शब्द को ले सकते हैं। इन शब्दों का प्रयोग सामने आते ही स्पष्ट हो जाता है कि कथन का अभिप्राय क्या है। इसे समझने के लिए साहित्य की भाषा की तरह बिम्ब, प्रतीक या लाक्षणिकता आदि का सहारा नहीं लेना पड़ता। यही वजह है कि विज्ञान में सबसे अधिक पारिभाषिक शब्दावली का इस्तेमाल होता है। बहुत सारी प्रयुक्तियों के लिए प्रतीक चिह्नों, संकेताक्षरों का सहारा लेना पड़ता है। आपने ध्यान दिया होगा कि रासायनिक तत्त्वों के नामों को संकेताक्षरों में लिखा जाता है। इसी प्रकार भौतिकी में वैज्ञानिक पदों के लिए प्रतीकों और संकेताक्षरों का इस्तेमाल होता है। खासकर जिन समस्याओं को गणीतीय सूत्र के जरिए हल करना पड़ता हो उनमें संकेताक्षरों से ही काम चलाया जाता है। यानी विज्ञान और तकनीक की भाषा में शैलीगत प्रयोगों की गुंजाइश नहीं रहती। बातें सीधे-सीधे और तार्किक ढंग से कही जाती हैं। चूँकि वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रयोगों द्वारा सिद्ध किए गए होते हैं इसलिए उनके कथन को तोड़-मरोड़ कर या दूसरे शब्दों में कहने का विकल्प नहीं होता। उन्हें जस का तस पेश किया जाता है।

भारत में प्राचीन काल से जो वैज्ञानिक सिद्धान्त और प्रयुक्तियाँ प्रचलित हैं हमारे यहाँ उन्हें जस का तस प्रयोग किया जाता है। वे तमाम प्रयुक्तियाँ संस्कृत से ली गई हैं, इसलिए उन्हें भारतीय भाषाओं में प्रयोग करते समय ज्यादा मुश्किलें पेश नहीं आतीं। मगर जो नई और आधुनिक वैज्ञानिक प्रयुक्तियाँ बदलते समय के अनुसार चलन में आईं, उन्हें जस का तस या संस्कृतनिष्ठ शब्दों में अनुवाद करके इस्तेमाल किया जाता है। इसके लिए केन्द्रीय स्तर पर वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली तैयार की गई है। इसी शब्दावली का उपयोग प्रायः पाठ्यपुस्तकों और दूसरे कामकाज में किया जाता है। इनमें बहुत सारे शब्दों को अन्तरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप ही इस्तेमाल किया जाना स्वीकार किया जा चुका है। इसलिए उनका अनुवाद नहीं किया जाता। इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, कैलोरी, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, एम्पियर, वोल्टामीटर, अल्फा, बीटा, गामा, स्पेक्ट्रम वगैरह। कुछ शब्दों के अन्तरराष्ट्रीय मानकों को तोड़ कर उसका हिन्दीकरण कर लिया गया है जैसे आयन को जस का तस प्रयोग किया जाता है, मगर Ionization का हिन्दीकरण कर 'आयनीकरण' बना लिया गया।

10.6.4 मीडिया

मीडिया, यानी संचार माध्यमों पर मुख्य रूप से समाचार और सूचनाओं का प्रकाशन-प्रसारण किया जाता है। इसलिए इन माध्यमों का सम्बन्ध समाज के व्यापक जन समुदाय से होता है। यही वजह है कि इसकी भाषा और शैली में सहजता, सरलता और सम्प्रेषणीयता जरूरी होती है। इनमें भाषा प्रयोग का क्षेत्र भी व्यापक होता है। ध्यान दें तो

एक ही अखबार अपने विभिन्न अंचलों के अलग-अलग संस्करणों में अलग-अलग भाषा-शैली में पाई जाती है। मगर कुल मिलाकर यह ध्यान अवश्य रखा जाता है कि भाषा का मानक रूप प्रभावित न हो। बोलचाल की सहज भाषा और शैली का प्रयोग हो। अतिअलंकारिकता और दुरूह शब्दों से बचा जाए। रेडियो, टेलीविजन और अखबारों की भाषा पर ध्यान दें, उनमें प्रसारित-प्रकाशित खबरों-सूचनाओं को सुनते-पढ़ते समय ऐसे मौके बहुत कम आते होंगे जब आपको कोश की मदद से किसी शब्द का अर्थ समझने की जरूरत पड़ती होगी।

संचार माध्यमों के मोटे तौर पर तीन भाग होते हैं—समाचार, विचार और विज्ञापन या सूचनाएँ। विज्ञापन और सूचनाएँ चूँकि संचार माध्यमों के व्यावसायिक पक्ष होते हैं, वे दूसरों द्वारा तैयार होकर निर्धारित मूल्य के साथ प्रकाशित-प्रसारित कराए जाते हैं, उन पर संचार माध्यमों का कोई प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं होता; पर समाचारों और विचारों की भाषा पर, उनकी शैली पर, समग्र प्रस्तुति पर संचार माध्यमों का नियन्त्रण होता है। समाचारों के तहत विभिन्न विषयों और क्षेत्रों से जुड़ी घटनाएँ शामिल होती हैं। हालाँकि सभी समाचारों का संकलन संचार-माध्यम निजी स्तर पर नहीं करते, कर भी नहीं सकते—वे विभिन्न समाचार एजेन्सियों, विज्ञप्तियों आदि के माध्यम से बहुत सारे समाचार हासिल किए जाते हैं, इसलिए उनकी निष्पक्षता, विश्वसनीयता आदि को लेकर सन्देह हो सकता है। मगर समाचारों के चयन और प्रस्तुति का अधिकार चूँकि संचार-माध्यमों का अपना होता है, वे भाषा-शैली, वस्तुनिष्ठता आदि के स्तर पर दूसरे स्रोतों से आए समाचारों-सूचनाओं को अपने माध्यम के अनुरूप ढाल कर प्रस्तुत करते हैं। इसमें भाषा और शैली को अपने पाठक समूह के स्तर पर लाने की भरसक कोशिश होती है।

इसी तरह विचार पक्ष में अखबारों के सम्पादकीय, लेख और रेडियो-दूरदर्शन, इण्टरनेट आदि पर प्रसारित होने वाली वार्ताएँ, लेख वगैरह शामिल होते हैं। सम्पादकीय से इतर लेख वगैरह बाहर से, विषय विशेष के विशेषज्ञों से हासिल करने होते हैं, इसलिए उनमें बहुत फेर-बदल की गुंजाइश नहीं रहती, मगर समचार माध्यम अपनी अघोषित नीतियों के तहत उन्हें जाँचते-परखते-ढालते हैं।

मीडिया यानी संचार माध्यमों में जीवन के विविध पक्षों—राजनीति, अर्थ-व्यवस्था, बाजार, रोजगार, साहित्य-कला-संस्कृति, खेल, जीवन-शैली आदि को समेटा जाता है। जीवन का कोई भी पक्ष मीडिया की नजर से अछूता नहीं है। इसलिए सभी संचार माध्यम बोलचाल की भाषा, भाषा की रवानगी, सहजता, सुबोधता आदि का ध्यान रखते हैं। यही वजह है कि इसमें हिन्दी, उर्दू, स्थानीय बोलियों का सहजता से समावेश हो जाता है। इसमें मुहावरे-लोकोक्तियों का भी खूब प्रयोग होता है। पत्रकारिता की एक विशेषता संक्षिप्तियों का भरपूर प्रयोग भी है। भाजपा (भारतीय जनता पार्टी), इनेलो (इण्डियन नेशनल लोकदल), राकांपा (राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी), बसपा (बहुजन समाज पार्टी), सपा (समाजवादी पार्टी), जरोयो (जवाहर रोजगार योजना), मनरेगा (महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना), बीमारू (बिहार मध्यप्रदेश राजस्थान उत्तर प्रदेश) आदि संक्षिप्तियों का धड़ल्ले से प्रयोग होता है।

इसी तरह जहाँ संचार माध्यम अपने स्रोत पर विश्वस्त नहीं होते, किन्हीं दूसरे स्रोतों से सूचनाएँ प्राप्त होती हैं और वे उन पर पूरी तरह भरोसा नहीं करते, उन खबरों के लिए—*एक सूचना के मुताबिक, विश्वस्त सूत्रों के अनुसार, माना जा रहा है*...जैसे पदों का सहारा लेते हैं।

समाचारों के मामले में आज भी संचार माध्यमों को अंग्रेजी पर निर्भर रहना पड़ता है। इसकी कई वजहें हैं। एक तो यह कि किसी एक भारतीय भाषा में सभी क्षेत्रों से समाचार-सूचनाएँ आदि ले पाना सम्भव नहीं है। दूसरी यह कि विदेशी समाचार एजेन्सियों के पास हर भाषा में अनुवाद की सुविधा नहीं है। हालाँकि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अनुवाद एजेन्सियाँ खुल गई हैं, मगर समाचारों के मामले में तेजी अधिक होने की वजह से तत्काल दुनिया की हर भाषा में हर खबर का अनुवाद करा कर प्रसारित कर पाना संवाद एजेन्सियों के लिए सम्भव नहीं होता। इसलिए हर संचार माध्यम अपने यहाँ खबरों के अनुवाद की व्यवस्था करते हैं।

संचार माध्यमों में सबसे पेचीदा काम होता है शीर्षक लगाना। शीर्षक लगाते समय ध्यान रखा जाता है कि समाचार या विचार का मुख्य सन्देश पाठक-श्रोता तक पहली ही नजर में पहुँच जाए और उसमें उस समाचार या लेख को पढ़ने के लिए उत्सुकता जागे। इसलिए शीर्षकों में सरल, बोधगम्य और प्रवाहपूर्ण शब्दों के इस्तेमाल के साथ-साथ रोचकता का ध्यान रखना पड़ता है। इसलिए इनमें लोकोक्तियों, मुहावरों, प्रचलित गीतों, कथनों आदि का भी सहज भाव से इस्तेमाल किया जाता है। जहाँ जरूरत होती है, व्यंग्य का उपयोग भी किया जाता है।

इस तरह देखें तो मीडिया की भाषा में साहित्य, कला, वाणिज्य, प्रशासन, कानून, लोक आदि क्षेत्रों के शब्दों के इस्तेमाल के बावजूद बोलचाल की भाषा का इस्तेमाल होता है। इसलिए संचार माध्यमों पर उपलब्ध या प्रसारित-प्रकाशित की जाने वाली सामग्री के अनुवाद के समय इसके मिजाज को ध्यान में रखना जरूरी होता है।

10.6.6 विज्ञापन आदि

विज्ञापनों का मकसद लोगों तक सूचनाएँ पहुँचाना होता है। इसलिए इनकी भाषा सीधी, सरल और बगैर किसी प्रतीक, बिम्ब, शैलीगत घुमाव के होती है। इसमें ऐसी शब्दावली का प्रयोग होता है जो साधारण से साधारण, कम पढ़े-लिखे व्यक्ति को भी आसानी से समझ में आ सके। विज्ञापन का एक मकसद यह भी होता है कि उसमें कही गई बातें पाठक या श्रोता को देर तक याद रह सकें और वह उनसे प्रभावित और प्रेरित हो। इसलिए आपने ध्यान दिया होगा कि अक्सर किसी उत्पाद के विज्ञापनों में बातें बहुत कम शब्दों में, बल्कि कई बार नारे की शक्ल में कही जाती हैं। उसमें लयात्मकता होती। कथन में शब्दों का चुनाव कुछ इस तरह किया जाता है कि वे सबकी समझ में आ सकें और देर तक मन में गूँजते रहें। इसलिए विज्ञापनों में अक्सर बोलचाल की भाषा का इस्तेमाल किया जाता है। कई बार किसी गीत की धुन, लोक में प्रचलित किसी मुहावरे, कथन आदि के सहारे कथन को ढाला जाता है। विज्ञापन में ज्यादा बातें कहने से इसलिए बचा जाता है कि ऐसा करने से पाठक या श्रोता को वे देर तक याद नहीं रह पातीं। इसलिए केन्द्रीय भाव को मुख्य रूप से उभारने की कोशिश की जाती है। चलते-फिरते, टीवी-रेडियो देखते-सुनते निरन्तर आप विज्ञापनों के रू-ब-रू होते हैं। उनकी भाषा पर ध्यान दें तो बात स्पष्ट हो जाएगी।

स्वाद और सेहत का खजाना

शुद्धता की गारण्टी

जीभ लपलपाई

जीवन भर का साथी

जमाने के साथ

जीवन के साथ भी जीवन के बाद भी

सबसे आगे

विज्ञापनों के ऐसे बेशुमार कथन आप रोज देखते, पढ़ते, सुनते हैं और वे आपके मन में देर तक बने रहते हैं।

विज्ञापनों को उनकी प्रकृति, आकार-प्रकार आदि के आधार पर बड़े, छोटे, मँझोले, वर्गीकृत विज्ञापन आदि के रूप में बाँट कर देख सकते हैं। अक्सर बड़ी कम्पनियाँ अपने उत्पाद के बारे में उसके केन्द्रीय भाव को नारे की शक्ल में पेश करती हैं। ऐसे विज्ञापनों का स्वरूप अखबार-पत्रिकाओं, सड़कों के किनारे लगे होर्डिंगों, टीवी-रेडियो आदि को ध्यान में रख कर तय किया जाता है। लेकिन जो विज्ञापन किसी योजना के प्रचार-प्रसार, नीतिगत मसलों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराने, जनजागरूकता फैलाने आदि के मकसद से तैयार किए जाते हैं उनमें केवल नारे की शक्ल में केन्द्रीय कथन पेश कर देने भर से काम नहीं चलता। उनमें सम्बन्धित योजना, समस्या नीति आदि के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराने की आवश्यकता होती है। फिर भी यह ध्यान रखना जरूरी होता है कि विज्ञापन की भाषा दुरूह, अस्पष्ट और टेढ़ी-मेढ़ी न हो। सूचनात्मक हो। इसलिए उनमें सभी महत्त्वपूर्ण बातें बिन्दुवार स्पष्ट की जाती हैं। आपने बरसात के समय में जलजमाव से फैलने वाली बीमारियों से बचने के लिए स्वास्थ्य मन्त्रालय के विज्ञापन देखे होंगे या महात्मागाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी योजना के विज्ञापन देखे होंगे। ये विज्ञापन कुछ ऐसे ही होते हैं।

इसी प्रकार, शादी-विवाह, जमीन-जायदाद, नौकरी, वस्तुओं के खो जाने, नाम परिवर्तन आदि से सम्बन्धित विज्ञापनों की भाषा सूचनात्मक होती है। ऐसे विज्ञापन मुख्य रूप से अखबारों-पत्रिकाओं में प्रकाशित किए जाते हैं। उन्हें रेडियो-टी.वी. पर भी प्रसारित किया जा सकता है, लेकिन सड़कों के किनारे लगे होर्डिंगों पर लगाना सम्भव नहीं होता। छोटे कारोबारी अक्सर परचों के रूप में भी अपने कारोबार से सम्बन्धित विज्ञापन करते हैं। बहुत सारे शहरों

में आज भी दीवारों पर विज्ञापन लिखने और घूम-घूम कर लाउडस्पीकर आदि के जरिए प्रसारित करने का चलन है।

विज्ञापन का माध्यम कोई भी हो, उसकी भाषा सूचनात्मक, सहज, सरल और सर्वग्राह्य होती है। इसमें साहित्य की तरह लाक्षणिक अर्थ पेश करने की गुंजाइश नहीं रहती।

10.7 भाषा संरचना में अनुवाद की प्रक्रिया

ऊपर हुई बातचीत के आधार पर आपने समझ लिया होगा कि अनुवाद करते समय स्रोत और लक्ष्य भाषाओं की प्रकृति को समझना जरूरी होता है। भाषा की संरचना में वहाँ की भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियाँ काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसलिए दो भाषाओं की संरचना में अक्सर भिन्नता पाई जाती है। यह भिन्नता शब्द चयन के स्तर पर भी होती है और वाक्य संरचना के स्तर पर भी। इसलिए अनुवाद करते समय न सिर्फ भाषिक संस्कृतियों से परिचित होना जरूरी होता है, बल्कि स्रोत भाषा की बातों को लक्ष्य भाषा की सांस्कृतिक बनावट के अनुरूप प्रस्तुत करना होता है। ऐसे में कई बार शब्दकोशीय अर्थ से भिन्न भावात्मक अर्थ ग्रहण करते हुए अनुवाद करने की जरूरत होती है। अनुवाद का काम दूसरी भाषा में हर शब्द के अर्थ खोलना नहीं बल्कि स्रोत भाषा की बातों को लक्ष्य भाषा में पूरी अर्थवत्ता के साथ अभिव्यक्त करना होता है। इसलिए अनुवाद की प्रक्रिया कई स्तरों पर स्वतन्त्र रचना के करीब पहुँच जाती है। मगर तकनीकी शब्दावली के मामले में बहुत छूट की गुंजाइश न होने के कारण वह विषय-वस्तु से बँधा होता है। लेकिन हर स्थिति में अनुवाद की प्रक्रिया एक कुशल रचनाकार की माँग करती है।

10.8 सारांश

जिस भाषा से अनुवाद किया जाता है उसे स्रोत भाषा और जिस भाषा में किया जाता है उसे लक्ष्य भाषा कहते हैं। स्रोत और लक्ष्य भाषा में सामाजिक, सांस्कृतिक और परिवेशगत भिन्नताएँ होने की वजह से अनुवाद करते समय तिर्यक ढंग से अर्थ निकालते हुए लक्ष्य भाषा में उसे पेश किया जाता है। इस पद्धति को व्यतिरेकी विश्लेषण कहते हैं। अनुवाद में भाषाओं की प्रकृति के अनुरूप शब्द चयन, वाक्य विन्यास आदि का ध्यान रखना पड़ता है। इसमें समानार्थी और समानार्थी लगने वाले शब्दों की पहचान करने के साथ-साथ अपनी तरफ से कुछ जोड़ने या कुछ छोड़ने की भी जरूरत पड़ती है। औपचारिक और अनौपचारिक भाषा व्यवहार के अनुसार प्रयुक्तियाँ बदल जाया करती हैं। विभिन्न विषय क्षेत्रों जैसे साहित्य, वाणिज्य-व्यापार, संचार माध्यम, विज्ञापन, विज्ञान और तकनीक, समाज विज्ञान आदि के अनुसार भाषा सम्बन्धी प्रयुक्तियाँ बदल जाती हैं। अनुवाद की प्रक्रिया एक कुशल रचनाकार की माँग करती है। वह भाषा संरचना में बहुत कुछ नया जोड़ती है।

10.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. सम्बन्धों से जुड़े शब्दों के अनुवाद में कैसी सावधानियाँ अपेक्षित होती हैं?
2. व्यतिरेकी विश्लेषण की जरूरत क्यों पड़ती है?
3. स्रोत भाषा के कुछ ऐसे शब्दों की सोदाहरण व्याख्या करें जिनका लक्ष्य भाषा में एक ही अर्थ होता है।
4. भाषाओं की विविधता के मद्देनजर अनुवादक किन स्तरों पर छूट लेता या ले सकता है?
5. भाषा प्रयुक्ति के निर्धारक तत्त्व क्या हैं?
6. भाषा की बनावट में संरचना की क्या भूमिका होती है?
7. भाषा प्रयुक्ति में शैली किस प्रकार महत्त्वपूर्ण होती है?
8. औपचारिक और अनौपचारिक भाषा प्रयोग में भेद स्पष्ट कीजिए।
9. विषय-क्षेत्र के अनुसार सम्प्रेषण की भाषा पर क्या असर पड़ता है?
10. विभिन्न विषय-क्षेत्रों के अनुसार भाषा प्रयुक्तियों की प्रकृति स्पष्ट कीजिए।

11. प्रयुक्तियों की दृष्टि से विज्ञापन की भाषा पर प्रकाश दीजिए।
12. अनुवाद में व्यतिरेकी विश्लेषण का क्या महत्त्व है?
13. अनुवाद करते समय अपनी तरफ से कुछ जोड़ने या छोड़ने की जरूरत क्यों पड़ती है?
14. भाषा व्यवहार के स्तर यानी औपचारिक और अनौपचारिक आधार पर प्रयुक्तियाँ किस प्रकार प्रभावित होती हैं?
15. भाषा प्रयुक्तियों के विभिन्न आधारों की व्याख्या कीजिए।
16. विषय क्षेत्रों के अनुसार भाषा प्रयुक्तियों का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

10.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- *प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम, 1957।*
- मिश्र, जयप्रकाश (डॉ.), *बौद्धिक सम्पदा अधिकार : एक परिचय,* सेण्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
- Bhandari, M.K., *Intellectual Property Rights*, Central Law Publication, Allahabad
- खन्ना, सन्तोष, *भारतीय कानूनों का समाज शास्त्र,* भारत ज्योति प्रकाशन, दिल्ली।
- गुप्त, गार्गी एवं टण्डन, पूरनचन्द(सं.), *अनुवाद बोध,* भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली।
- टण्डन, पूरनचन्द, *अनुवाद साधना,* अभिव्यक्ति प्रकाशन, दिल्ली।
- टण्डन, पूरनचन्द एवं सेठी, हरीश कुमार, *अनुवाद के विविध आयाम,* तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।
- भाटिया, कैलाश चन्द्र, *अनुवाद कला : सिद्धान्त और प्रयोग,* तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।
- टण्डन, पूरनचन्द(सं.), *अनुवाद शतक (भाग 1 एवं 2),* भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली।
- सिंहल, सुरेश, *अनुवाद : संवेदना और सरोकार,* संजय प्रकाशन, दिल्ली।
- तिवारी, भोलानाथ, *अनुवाद विज्ञान,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- अय्यर, एन.ई.विश्वनाथ, *अनुवाद कला,* प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
- गुप्त, अवधेश मोहन, *अनुवाद विज्ञान : सिद्धान्त और सिद्धि,* राष्ट्रभाषा प्रकाशन, दिल्ली।
- कुमार, सुरेश, *अनुवाद सिद्धान्त की रूपरेखा,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- *अनुवाद(पत्रिका),* अनुवाद कला का प्रशिक्षण विशेषांक, अंक 53, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली।
- शर्मा, रामविलास, *भाषा और समाज,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- श्रीवास्तव, रवीन्द्र, *हिन्दी भाषा का समाजशास्त्र,* राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
- कर्वे, इरावती, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़।
- *हिन्दी साहित्य कोश,* वर्मा, धीरेन्द्र (संपा.), *भारत में बन्धुत्व संगठन,* ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी।
- बॉटमोर, टी. बी. अनुवाद : प्रधान, गोपाल, *समाजशास्त्र (समस्याओं और साहित्य का अध्ययन),* ग्रन्थशिल्पी, दिल्ली।
- श्रीनिवास, एम. एन., *आधुनिक भारत में जातिवाद तथा अन्य निबन्ध,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

MPDD/IGNOU/P.O.1T/MAY, 2014

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ISBN: 978-81-266-6718-5